विवेकशिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भाव-धारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ अंक—११-१२

युवा शक्ति विशेषांक

मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। —स्वामी विवे[कानन्द]

मूल्य : ५.००

इस अंक में

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—४ नवम्बर-दिसम्बर—१९८५ अंक—११-१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल, 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय:

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

आजीवन सदस्य	२५० रु०
षड् वार्षिक	१०० रु०
त्रैवार्षिक	५५ रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु० ५० पैसे

रचनाएँ एवं सहयोग-राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

श्रीरामकृष्ण ने कहा है

(१)

तुम रात को आकाश में कितने तारे देखते हो, परन्तु सूरज उगने के बाद उन्हें देख नहीं पाते। किन्तु इस कारण क्या तुम यह कह सकोगे कि दिन में आकाश में तारे नहीं होते! हे मानव, अज्ञान-अवस्था में तुम्हें ईश्वर के दर्शन नहीं होते इसलिए ऐसा न कहो कि ईश्वर हैं ही नहीं।

(२)

कोरे पाण्डित्य से क्या लाभ? पण्डित को बहुत सारे शास्त्र, अनेकों श्लोक मुखाग्र हो सकते हैं, पर वह सब केवल रटने और दुहराने से क्या लाभ? अपने जीवन में शास्त्रों में निहित सत्यों की प्रत्यक्ष उपलब्धि होनी चाहिए। जब तक संसार के प्रति आसक्ति है, कामिनी-कांचन पर प्रीति है, तब तक चाहे जितने शास्त्र पढ़ो, ज्ञान लाभ नहीं होगा, मुक्ति नहीं मिलेगी।

(३)

ऊँचा उठना हो (महान् बनना हो) तो पहले नीचा (नम्र) बनना चाहिए। चातक पक्षी का घोंसला नीचे होता है पर वह आसमान में बहुत ऊँचा उड़ता है। ऊँची जमीन में खेती नहीं होती, उसके लिए नीची जमीन चाहिए, जहाँ पानी जम सके। तभी खेती होती है।

(४)

स्त्रियाँ स्वभाव से भली हों या बुरी, सती हों या असती, उन्हें सदैव आनन्दमयी जगन्माता की मूर्ति के रूप में देखना चाहिए।

(५)

जीवों पर दया? जीवों पर दया? धत् मूर्ख! तू स्वयं कीटानुकीट होकर जीवों पर दया करेगा? दया करनेवाला तू कौन है? नहीं, नहीं, 'जीवों पर दया' नहीं—'शिवबुद्धि से जीवों की सेवा!'

वैदिक अनुशासन

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यं च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोत्रं च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथियश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च ।

सत्यं वद । धर्मं चर । स्वाध्यायान्मा प्रमदः । सत्यान्न प्रमदितव्यम् । कुशलान्न प्रमदितव्यम् । भूत्यै न प्रमदितव्यम् । स्वाध्याय प्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम् ।

यथायोग्य सदाचार का पालन; और; शास्त्र का पढ़ना-पढ़ाना भी (यह सब अवश्य करना चाहिए) सत्य भाषण; और; शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना भी (साथ-साथ करना चाहिए) तपश्चर्या; और; शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना भी (साथ-साथ करना चाहिए); इन्द्रियों का दमन; और; शास्त्रों का पढ़ना-पढ़ाना (साथ-साथ करना चाहिए) मन का निग्रह और शास्त्रों का अध्ययन अध्यापन, अग्नियों का चयन और स्वाध्याय तथा प्रवचन, अतिथियों की सेवा और शास्त्रों का पठन-पाठन तथा मनुष्योचित लौकिक संस्कार रूप कर्म और सद्ग्रन्थों का पठन-पाठन करना चाहिए।

तुम सत्य बोलो, धर्म का आचरण करो, स्वाध्याय मे कभी न चूको। सत्य से नहीं डिगना चाहिए। धर्म से, शुभ कर्मों से, उन्नति के साधनों से कभी नहीं चूकना चाहिए। स्वाध्याय और प्रवचन में भूल नहीं करनी चाहिए। देव कार्य और पितृ कार्य से कभी नहीं चूकना चाहिए।

रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महाध्यक्ष

पूज्यपाद श्रीमत स्वामी गंभीरानन्दजी महाराज

का

शुभकामना-संदेश

Phone : 66-3619

RAMAKRISHNA MATH

P.O. BELUR MATH, DT. HOWRAH

November 4, 1985

इस वर्ष दिसम्बर के महीने में बेलुड़ मठ में आयोजित युवसम्प्रदाय के महासम्मेलन (**Youth Convention**) के अवसर पर रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी "विवेक शिखा" का 'युव सम्मेलन' नामांकित एक विशेष अंक प्रकाशित होगा, जानकर आनन्दित हुआ हूँ।

भगवान की कृपा "विवेक शिखा' के सभी कर्मी, लेखक तथा पाठकों पर बनी रहे, यही प्रार्थना है।

इति—

सदैव शुभ कामनाओं के साथ,

शुभ चिन्तक

(Swami Gambhirananda)

(स्वामी गंभीरानन्द)

अध्यक्ष,

रामकृष्ण मठ तथा

रामकृष्ण मिशन

रामकृष्ण मठ तथा रामकृष्ण मिशन के सहाध्यक्ष

पूज्यपाद श्रीमत् स्वामी भूतेशानन्दजी महाराज

का

शुभकामना-संदेश

Phone : 35-2928

Ref.... ....

RAMAKRISHNA YOGODYAN MATH

7 YOGODYAN LANE, KANKURGACHHI

CALCUTTA-700 054, INDIA

Date November 3, 1985

I am happy to know that the Hindi magazine 'Vivek Shikha' is going to bring out a special issue on the Yuva Sammelan, scheduled to be held at the Head quarters of the Ramakrishna Math and Ramakrishna Mission, Belur, Howrah in December, 1985.

It will be in the fitness of things that such an issue will be published on the eve of the convention and also it will be an appropriate contribution to the welfare of the youth of our country, particularly in the vast Hindi speaking areas.

I pray for all success in this commendable attempt by the publishers of the Vivek Shikha.

SWAMI BHUTESHANANDA

Vice President

RAMAKRISHNA MATH &

RAMAKRISHNA MISSION.

उठहु राम भंजहु भवचापा

मेरे आत्मस्वरूप युवा मित्रो,

मैं आपके सामने अभी एक छोटी घटना का उल्लेख करना चाहता हूँ। स्वामी विवेकानन्दजी जब परिव्राजक के रूप में पश्चिम भारत की यात्रा कर रहे थे तब महाबालेश्वरम् में एक वकील के घर में अतिथि के रूप में टिके हुए थे। उस वकील को एक छोटा लड़का था। वह बच्चा भयंकर रूप से रोया करता था। जिस रात रोना शुरू करता उस रात घर में कोई सो नहीं पाता। ऐसा भयंकर उसका रुदन-क्रन्दन था। एक दिन स्वामीजी ने बच्चे के माता-पिता से कहा—'अच्छा, क्या आपलोग इस बच्चे को मुझे देंगे? आज रात मैं इसका तत्वावधान करूँगा।' बच्चे की माँ ने कहा,—'स्वामीजी, बच्चा देने में तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है, किन्तु आप बच्चे का रोना-चिल्लाना कैसे बंद कर सकेंगे? मैं माँ होकर जब उसे चुप नहीं कर पाती तब आप कैसे कर पायेंगे?' स्वामीजी ने कहा, 'ठीक है, मुझे प्रयास करने दो।' बच्चा स्वामीजी को दिया गया। स्वामीजी ने उस बच्चे को अपनी गोद में रखकर ध्यान करना शुरू किया। सारी रात उसे अपनी गोद में रखे हुए उन्होंने ध्यान किया और चमत्कार हो गया। चमत्कार यह हुआ कि सारी रात में एक बार भी बच्चा नहीं रोया—शान्त होकर स्वामीजी की गोद में सोया रहा। निस्सन्देह, स्वामीजी के ध्यान के प्रभाव से ही बच्चे का रुदन समाप्त हो गया था।

घटना छोटी है, किन्तु है अर्थपूर्ण। क्या हम युवाओं की स्थिति भी उसी रोनेवाले बच्चे की तरह नहीं है? क्या हम भी अपने भीतर एक घोर अशान्ति का अनुभव कर आकुल-क्रन्दन, आतुर चीत्कार नहीं कर रहे हैं? युवजनों द्वारा की जानेवाली लूट-पाट, हिंसाएँ, पापाचार, परीक्षाओं में की जानेवाली कदाचारिता, मादक द्रव्यों का छूटकर सेवन, छात्रावासों में आनेवाले नये छात्र-छात्राओं की रैगिंग, बिना टिकट यात्रा करने की प्रवृत्ति—ये सब तथ्य हमारे भीतर होने वाले एक विराट् हाहाकार, एक आकुल चीत्कार, एक बेइंतहा बेचैनी, एक करुण-क्रन्दन के ही व्यक्त रूप हैं। और इस रुदन-क्रन्दन से मुक्ति के लिए, एक अक्षय आनन्द और अखंड शान्ति के लिए स्वामी विवेकानन्द की गोद में जाने के सिवा क्या और कोई विकल्प है हमारे सामने?

आप पूछ सकते हैं, क्या स्वामीजी उस बच्चे की भाँति हमें अपनी गोद में लेने को तैयार हैं? मैं कहूँगा—हैं, अवश्य हैं। उन्होंने उस बच्चे के माता-पिता से कहा था—'अच्छा, क्या आपलोग इस बच्चे को मुझे देंगे? आज रात मैं इसका तत्वावधान करूँगा।' इसी प्रकार उन्होंने कहा था—'अनेक लड़कों की आवश्यकता है जो सब कुछ छोड़-छाड़कर देश के लिए जीवनोत्सर्ग करें। पहले उनका जीवन निर्माण करना होगा, तब कहीं काम होगा।' बच्चे की माँ को संदेह हुआ था। उसने कहा था—'मैं माँ होकर जब उसे चुप नहीं कर पाती तब आप कैसे कर पायेंगे?' आज भी समाज के कुछ लोगों को सन्देह हो सकता है। होता भी है। वे सोचते हैं जब शासन तंत्र, अभिभावकगण और शिक्षण संस्थाएँ इन बच्चों को शान्त नहीं कर पातीं, शीलवन्त नहीं बना पातीं; अनुशासित नहीं कर पातीं तब स्वामीजी के हाथों में क्या कोई जादू की छड़ी है? लोग पूछ सकते हैं, पूछते भी हैं—'जब हम लोग अपने लड़कों को संयमित नहीं कर पाते हैं तब आप कैसे कर पायेंगे?'

और स्वामीजी का वही उत्तर होगा—'ठीक है, मुझे प्रयास करने दो।' स्वामीजी प्रयास करने को तत्पर हैं, अगर हम उनकी गोद में जा पायँ। उनका उद्घोष सुनिए—'मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है। उन्हीं में से मैं अपने कार्यकर्त्ताओं का संग्रह करूँगा। वे सिंह विक्रम से देश की यथार्थ उन्नति सम्बन्धी सारी समस्या का समाधान करेंगे। वर्तमान काल में अनुष्ठेय आदर्शों को मैंने एक निर्दिष्ट रूप में व्यक्त कर दिया है और उसको कार्यान्वित करने के लिए मैंने अपना जीवन समर्पित कर दिया है।......वे एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र का विस्तार करेंगे और इस प्रकार हम धीरे-धीरे समग्र भारत में फैल जायेंगे।'

हमें भय हो सकता है, होता भी है—क्या हम स्वामीजी की गोद में जाकर सो तो नहीं जायेंगे? क्या हम अपने भौतिक सुखों से वंचित होकर, भोगों से विरत होकर एक प्रकार की निष्क्रियता या पलायनवादिता में निरत तो नहीं हो जायेंगे? ऐसा भय उन अज्ञानियों को हो सकता है जो स्वामीजी को जानते ही नहीं। अरे, वे हमें सुलायेंगे क्यों? सोये हुए तो हम हैं ही। एक विचित्र मूर्च्छा में हम कब से पड़े हुए हैं। एक महामोह और क्षुद्र भोग की जड़ता में तो हम कब से तन्द्राभिभूत हो चुके हैं। स्वामीजी हमें सुलायेंगे नहीं, हमें जगायेंगे। वे जागरण का महान् अग्निमंत्र हमारे कानों में फूँकते हुए हमें उद्बुद्ध करेंगे—"उठो, जागो और सोओ मत, सम्पूर्ण अभाव और दुःख नष्ट करने की शक्ति तुम्हीं में है; इस बात पर विश्वास करने से ही वह शक्ति जाग उठेगी। ......यदि तुम भी सोच सको कि हमारे अन्दर अनन्त शक्ति, अपार ज्ञान, अदम्य उत्साह वर्त्तमान है, और अपने भीतर की शक्ति को जगा सको तो तुम भी मेरे समान हो जाओगे।" हमारी निर्वीर्यता और कायरता से भरे रुदन पर कशाघात करते हुए स्वामीजी कहेंगे- 'तुम क्यों रोते हो, बन्धु? तुम्हीं में तो सारी शक्ति निहित है। ऐ महान्, अपनी सर्वशक्तिमान प्रकृति को उद्बुद्ध करो, देखोगे, यह सारी दुनिया तुम्हारे पैरों पर लोटने लगेगी।' और तब 'लाखों स्त्री-पुरुष पवित्रता के अग्निमंत्र से दीक्षित होकर, भगवान के प्रति अटल विश्वास से शक्तिमान बनकर और गरीबों, पतितों तथा पददलितों के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस संपूर्ण भारत देश के एक छोर से दूसरे छोर तक सर्वत्र उद्धार के संदेश, सेवा के संदेश, सामाजिक उत्थान के संदेश और समानता के संदेश का प्रचार करते हुए विचरण करेंगे।'

हम युवजन एक विचित्र तंद्रा में, बेहोशी में, मोह निद्रा में आज पड़े हुए हैं। किन्तु इसके लिए परिस्थितियाँ, परिवेश और व्यवस्था भी कम उत्तरदायी नहीं है। हमारे सामने जो पत्र-पत्रिकाएँ पेश की जा रही हैं, उनमें अधिकांश व्यावसायिक हैं। वे सच्ची कहानी के नाम पर उद्दाम सेक्स और नग्न भोग की कथाएँ उत्तेजक रूप में छापती हैं। वे तंत्र-विशेषांक, भूत-प्रेत विशेषांक और सेक्स विशेषांक प्रकाशित करती हैं। हमारे सामने जो फिल्में पेश की जाती हैं उनका उद्देश्य मनोरंजन के नाम पर मात्र पैसे बटोरना रहता है। वे हमारे पुरुषत्व का, हमारे नारीत्व का मखौल बनाती हैं। वे हमारे 'इमोशन' को उभारकर, खरीदकर हमें नपुंसक बनाने की साजिश करती हैं। वे हमारे देवत्व को नहीं, हमारे पशुत्व को, हब्शीपने को मुखरित करती हैं, हमारे शुक्ल पक्ष का नहीं, कृष्ण पक्ष का उद्घाटन करती हैं। वे हमें जगाती नहीं, सुलाती हैं; हमें अमृत नहीं, विष देती हैं। और हम उनसे सीखते हैं हिंसा, लूट-पाट, बलात्कार और अनाचार का कला-कौशल। वे हमें ऐसे मादक सपनों का, उन्मादक दृश्यों का और आत्मघातक गीतों-संगीतों से भरे कामोत्तेजक परिवेशों की अफीम चटाकर सदा-सदा के लिए सुला देने का षड्यंत्र करती हैं। हमारे टेलिविजन हमें चिंतनशीलता से हटाकर उनकी छवि निगलने को विवश करते हैं जिनमें ग्रहण करने का कोई गुण ही नहीं होता। हम क्या करें! हमारी व्यवस्था ने हमारे सामने कुछ ऐसे जाल बुन दिए हैं जिनमें फँसकर मछलियों की भाँति हम उछल-कूद करने को विवश हो गये हैं, अभिशप्त

हो गये हैं। रूमानियत हमारी नियति हो गयी है, उच्छृंखलता हमारा स्वभाव बनती जा रही है, आदर्श और परम्परा का भंजन करना हमारा स्वधर्म बनता जा रहा है।

और फिर ऊपर से पश्चिमी संस्कृति की मार हम पर ताबड़तोड़ पड़ रही है। पश्चिमी जगत से आनेवाला हर वायुयान अपने साथ नये फैशन के, नयी रूप-सज्जा के, नये उदग्र विचारों के कोटि-कोटि विषकीट हमारे हवाई अड्डों पर उड़ेल देता है और हम उनके दंश से अपने को बचा नहीं पाते।

और इन सबसे बढ़कर विज्ञान के बढ़ते चरण ने हमारी आस्था की इमारत की ईंट ही खिसका दी है। हमारा विश्वास हिल गया है। हमारी नैतिकता चरमराने लगी है। हमारा हृदय सूखने लगा है। हमारी संवेदनशीलता की लता मुरझाने लगी है। विज्ञान ने धरती को ही नहीं हमारी श्रद्धा को भी संकुचित कर दिया है, पृथ्वी ही नहीं सिमटी, हम भी अपने में सिकुड़-सिमट गये हैं। हमारी बुद्धि बढ़ी है पर हमारा हृदय-प्रदेश हमसे छिन गया है। एक कवि ने कितना ठीक कहा है—

यह प्रगति निस्सीम ! नर का यह अपूर्व विकास !
चरणतल भूगोल ! मुट्ठी में निखिल आकाश !
किन्तु, है बढ़ता गया मस्तिष्क ही निःशेष,
छूटकर पीछे गया हैं रह हृदय का देश;
नर मनाता नित्य नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।

सच हम कितने असहाय हो गये हैं ! हमारी परिस्थितियों ने हमें कितना तोड़ा है ! हमारे परिवेश ने हमें कितना बौना कर दिया है ! हमारी आयातित पश्चिमी संस्कृति ने हमें वासना की घनी अँधेरी रात में कितना ठेल दिया है ! हमें कितना पशु और नीच बना दिया है !

मेरे युवा मित्रो, हमें इन परिस्थितियों को झेलते हुए भी इनसे ऊपर उठना होगा। हमें अपने पराक्रम को, अपने पौरुष को, अपने शील को, अपने देवत्व को जगाना होगा। हमें स्वामीजी की गोद में जाना ही होगा। उनका अग्नि-मंत्र सुनना ही होगा—

"भले ही तुम्हारा सूर्य बादलों से ढँक जाय,
आकाश उदास दिखायी दे,
फिर भी धैर्य धरो कुछ हे वीर हृदय
तुम्हारी विजय अवश्यम्भावी है।

शीत के पहले ही ग्रीष्म आ गया,
लहर का दवाव ही उसे उभारता है
धूप-छाँह का खेल चलने दो
और अटल रहो, वीर बनो !

जीवन में कर्तव्य कठोर हैं,
सुखों के पंख लग गये हैं,
मंजिल दूर, धुँधली-सी झिलमिलाती है,
फिर भी अंधकार को चीरते हुए बढ़ जाओ,
अपनी पूरी शक्ति और सामर्थ्य के साथ !......"

(खेतड़ी के महाराज को लिखित 'Hold on yet a while, Brave Heart' "धीरज रखो तनिक और हे वीर हृदय !" नामक कविता के अंश।)

ठीक है, हम गिरे हैं। हमारा देवत्व दबा है। हमारी पशुता उभरी है। मगर यही रोना हम कब तक रोते रहें ! अपनी पशुता का चिंतन करते-करते हम पशु ही हो जायँगे। नहीं, हम पशु नहीं हैं। यह हमारी परिस्थिति जन्य क्षणिक तस्वीर है, हमारा शाश्वत रूप नहीं। सोने के पात्र पर मिट्टी का लेप लग जाने से पात्र मिट्टी का नहीं हो जाता। जरूरत होती है मिट्टी के लेप को झाड़ देने की। बस। पात्र का स्वर्णत्व इतने मात्र से उजागर हो उठता है। हम भी पशु नहीं हैं। यह हमारा स्वरूप नहीं है। कायरता, कामुकता, भोगोन्मुखता, संकीर्ण स्वार्थपरता और दीनता हमारी आंतरिक छवि नहीं है। हम तो विराट् ब्रह्मस्वरूप हैं,

साक्षात् शिव है। केवल जरूरत है हमें अपना स्वरूप पहचानने की, अपने हिरण्य पात्र पर से मिट्टी का लेप झाड़ देने की, तंद्रा से एक बार फिर जग जाने की। "तुममें से प्रत्येक को महान् होना होगा—'होना ही होगा' यही मेरी टेक है। यदि तुममें आदर्श के लिए आज्ञा पालन, तत्परता और कार्य के लिए प्रेम — ये तीन बातें रहें, तो तुम्हें कोई रोक नहीं सकता।" मित्रो—

जागो फिर एक बार !

पशु नहीं, वीर तुम
समर-शूर, क्रूर नहीं;
कालचक्र में हो दबे आज तुम राजकुँअर,
समर सरताज !

मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन-बन्ध छन्द ज्यों,
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप······
तुम हो महान्, तुम सदा हो महान्,
है नश्वर यह दीन भाव,
कायरता कामपरता,
ब्रह्म हो तुम,
पदरज भर भी है नहीं,
पूरा यह विश्वभार —

जागो फिर एक बार।

हम इक्कीसवीं सदी के द्वार पर हैं। हम इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने की जोरदार तैयारी भी कर रहे हैं। कम्प्यूटर युग में हमारा आरोहण हो रहा है। हम विज्ञान का अभिनन्दन करते हैं। विज्ञान से हमारा विरोध नहीं। लेकिन विज्ञान के नाम पर हम अपनी ऊँची आध्यात्मिक विरासत को कहीं छोड़ न दें ! यही खतरा है। वह भारत के सबसे बड़े दुर्भाग्य का दिन होगा जब वह विज्ञान के कारण अपनी उच्चतम परम्परा और आध्यात्मिक ज्ञान को तिलांजलि दे देगा। यह एकांगिता भारत तो क्या सम्पूर्ण विश्व के ही विनाश के महाकाव्य का मंगलाचरण सिद्ध होगी। विज्ञान का अवदान लेकर भी हमें आत्मा का किरण-अभियान करना ही होगा। भौतिक सुख-समृद्धियों को स्वीकार कर भी हमें उच्चतम मानवीय गुणों को अंगीकार करना ही होगा। अपने भीतर दिव्य भावों का ज्वार उठाना ही होगा।

रसवती भू के मनुज का श्रेय
यह नहीं विज्ञान कटु, आग्नेय।
श्रेय उसका प्राण में बहती प्रणय की वायु,
मानवों के हेतु अर्पित मानवों की आयु।
श्रेय उसका आँसुओं की धार,
श्रेय उसका भग्न वीणा की अधीर पुकार।
दिव्य भावों के जगत में जागरण का गान,
मानवों का श्रेय आत्मा का किरण अभियान।

इन्हीं दिव्य भावों के जगत में जागरण का दैवी संदेश हमें स्वामीजी देते हैं। भारत विश्व की कुंडलिनी शक्ति है। इसके जागरण से ही विश्व का मंगल होगा। किन्तु, स्वामीजी उद्घोष करते हैं,...'भारत तभी जगेगा जब विशाल हृदयवाले सैकड़ों स्त्री-पुरुष भोग-विलास और सुख की सभी इच्छाओं को विसर्जित कर मन, वचन और शरीर से उन करोड़ो भारतीयों के कल्याण के लिए सचेष्ट होंगे जो दरिद्रता तथा मूर्खता के अगाध सागर में निरंतर नीचे डूबते जा रहे हैं।' और इसके लिए आवश्यक है कि हम अपने धर्म को दृढ़ता से पकड़े रहें। धर्मविहीन भारत भारत नहीं रहेगा। हम युवजनों को सम्बोधित करते हुए ही स्वामीजी मर्मभेदी स्वरों में कहते हैं—'मैं अपने अनुभव के बल पर तुमसे कहता हूँ कि जब तक तुम सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं होते, तब तक भारत का उद्धार होना असंभव है। भारतवर्ष का प्राण धर्म ही है, उसके जाने पर भारत नष्ट हो जायगा। अतः भारत में किसी प्रकार का सुधार या उन्नति की चेष्टा करने के पहले धर्म-प्रचार आवश्यक है। भारत को समाजवादी अथवा राजनीतिक विचारों से प्लावित

करने के पहले आवश्यक है, उसमें आध्यात्मिक विचारों की बाढ़ ला दी जाय।"

हम आज अपने मूल्यों को तोड़ते जा रहे हैं। किन्तु किसी नये मूल्य के स्थापन की ओर हमारा ध्यान नहीं है। मैं एक कथा की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहता हूँ। विदेहराज जनक ने एक प्रण किया था। जो कोई शिव के पिनाक को तोड़ सकेगा उसी के साथ सीता का विवाह होगा। अनेक राजाओं-महाराजाओं ने जोर लगाया। किन्तु शिव का धनुष टस से मस नहीं हुआ। राजर्षि जनक ने निराशा भरे स्वरों में घोषणा की—'तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू॥' लक्ष्मण क्रुद्ध हो उठे। वे अपने ऊपर दुर्बलता का आरोप झेल नहीं सके। समस्त विश्व ब्रह्मांड को ही गेंद की तरह उछाल देने को उद्यत हो उठे। किन्तु राम—मर्यादा पुरुषोत्तम राम शान्त, स्थिर और अनुद्विग्न ही बैठे रहे। विश्वामित्र ने आदेश दिया—

उठहु राम भंजहु भवचापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

और राम ने पलक मारते ही शिव का धनुष तोड़ दिया। किन्तु परशुराम क्रुद्ध हो उठे—'कहु जड़ जनक धनुष कै तोरा।'—किसने तोड़ा यह धनुष? वे राम पर अपने फरसे से आघात करने को तैयार हो गये। किन्तु राम के शील और विनम्रता से परशुराम की चेतना जगी। उन्होंने एक प्रतिप्रश्न किया, एक परीक्षा लेनी चाही—

राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचहु मिटै मोर संदेहू।

—अरे राम, आपने शिव के धनुष को तोड़ा है तो जरा विष्णु के धनुष को खींचिए तो सही, ताकि मेरा संदेह मिट जाय। और—

देत चापु आपुहि चलि गयऊ।
परशुराम मन विसमय भयऊ॥

परशुराम धनुष देने लगे तो वह आप ही चला गया। परशुराम चकित होकर शान्त हो गये।

इस कथा को हम एक प्रतीक भी मान सकते हैं। राम चिरन्तन यौवन के प्रतीक हैं। वे सड़े-गले मूल्यों के जड़ प्रतीक के रूप में, रूढ़िवादिता के रूप में पड़े शिव के धनुष को तोड़कर भारत की शाश्वत आध्यात्मिक संस्कृति रूपिणी सीता को संरक्षण देना चाहते हैं। बूढ़ों के रूप में परशुराम का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। किन्तु वे तब शान्त हो गये जब उन्होंने देखा कि राम ने रूढ़िवादिता के, जड़ मूल्यों के धनुष को तो तोड़ा है किन्तु वे विष्णु के धनुष को, नये स्वस्थ मूल्यों के पिनाक को चढ़ा भी सकते हैं, खींच भी सकते हैं। राम ने पुराने मूल्यों के धनुष को भी बिना गुरु के आदेश के नहीं तोड़ा। गुरु जानते थे भव चाप को राम ही तोड़ सकते हैं। भव का अर्थ शिव भी है और संसार भी। संसार पर जो भोग-विलास और पापाचार की भंडता का चाप पड़ा था उसे तोड़ने का आदेश गुरु विश्वामित्र ने राम को दिया।

मेरे युवा मित्रो, हम यदि किसी मूल्य को तोड़ें तो नये मूल्यों को स्थापित करने की क्षमता भी हममें होनी चाहिए। और आज सारा विश्व जिस भोगवाद, जड़ विलासवाद के चाप के नीचे भय, असुरक्षा एवं संत्रास से कराह रहा है उस चाप को तोड़कर अपनी चिरन्तन संस्कृति की सीता को संरक्षण प्रदान करने का गुरु गंभीर दायित्व भी हमें लेना ही होगा। इसके सिवा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

कैसे हम यह गुरुकार्य कर सकेंगे? फिर हमें स्वामीजी की ओर जाना होगा। सुनो उनकी आतुर पुकार को, तेजोद्दीप्त मंत्रोच्चार को। वे कहते हैं—'उत्साह से हृदय भर लो और सब जगह फैल जाओ। काम करो, काम करो। नेतृत्व करते समय सबके दास हो जाओ, निःस्वार्थ होओ और कभी एक मित्र को पीठ पीछे दूसरे की निन्दा करते मत सुनो। अनन्त धैर्य रखो, तभी सफलता तुम्हारे हाथ आयेगी। जो कुछ असत्य है, उसे पास न फटकने दो। ......इस तरह काम करते जाओ कि मानो मैं कभी था ही नहीं। इस तरह काम करो

कि मानो तुममें से हर-एक के ऊपर सारा काम निर्भर है। भविष्य की पचास सदियाँ तुम्हारी ओर ताक रही हैं—भारत का भविष्य तुम पर निर्भर है। काम करते जाओ।"

कार्य करने की प्रणाली बताते हुए स्वामीजी कहते हैं—'ऐ बच्चो, सबके लिए तुम्हारे दिल में दर्द हो—गरीब, मूर्ख, पददलित, मनुष्यों के दुःख का तुम अनुभव करो, समवेदना से तुम्हारे हृदय का स्पन्दन रुक जाय, मस्तिष्क चकराने लगे, तुम्हे ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं बन रहे हैं·····।' 'यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथार्थ सेवा करनी होगी। जो पीड़ित हैं उनके लिए औषधि और पथ्य का प्रबंध करो और शरीर के द्वारा उनकी सेवा-शुश्रूषा करो, जो भूखा है उसके लिए खाने का प्रबंध करो।"

स्वामीजी ने हम पर अदम्य विश्वास रखते हुए एक थाती हमें सौंप दी है। हमें उस विश्वास का उत्तर देना होगा, स्वयं को उनकी आशाओं के अनुकूल ढालकर। वे हमें झकझोड़ते हुए कहते हैं—"युवको! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ।······प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दोगे जो दिनोदिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। यदि तुम सचमुच मेरी संतान हो, तो तुम किसी वस्तु से न डरोगे, न किसी बात पर रुकोगे। तुम सिंह तुल्य होगे। हमें भारत को और पूरे संसार को जगाना है।" विश्वामित्र की भाँति स्वामीजी मानो हम युवारूपी राम को आदेश दे रहे हैं—'उठहुँ राम भंजहु भव चापा।' हम में से प्रत्येक युवक-युवती को विश्व पर पड़े पाप-ताप के चाप को तोड़ने का शुभ और सशक्त संकल्प लेना ही पड़ेगा। आइए, हम सब स्वामीजी से प्रार्थना करें कि वे जो थाती हमें सौंप गये हैं उसके संरक्षण-संवर्धन के लिए हम सक्षम-समर्थ हो सकें। हम समर्पित हो सकें स्वामीजी की आशाओं-आकांक्षाओं के प्रति। जय श्रीरामकृष्ण! जय स्वामीजी!!

बड़ा काम आने पर बहुतेरे वीर हो जाते हैं, दस हजार आदमियों की वाहवाही के सामने कापुरुष भी सहज ही में प्राण दे देता है; घोर स्वार्थपर भी निष्काम हो जाता है; परन्तु अत्यन्त छोटे से कर्म में भी सब के अज्ञात, भाव से जो वैसी ही निःस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं—वे तुम लोग हो—भारत के हमेशा के पैरों के तले कुचलते हुए श्रमजीवियों!—तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।

—स्वामी विवेकानन्द

मैं युवकों को क्यों प्यार करता हूँ ?

—श्रीरामकृष्ण

मैं कुमार बालकों को इतना प्यार क्यों करता हूँ, जानते हो ? बाल्यावस्था में उनका मन सोलहों आना अपने बस में रहता है। पर बड़े होने पर धीरे-धीरे कई भागों में विभाजित हो जाता है। विवाह होने पर आठ आना स्त्री के पास चला जाता है। सन्तान होने पर चार आना बच्चों की ओर बँट जाता है, और चार आना माता-पिता, मान-सम्मान और सजधज की ओर रहता है। इसलिए जो लोग छोटी अवस्था में ईश्वरलाभ की चेष्टा करते हैं, वे सहज ही में सफल हो जाते हैं। बूढ़ों के लिए सफलता पाना बड़ी कठिन समस्या हो जाती है।

आम, अमरूद इत्यादि के केवल साबूत फल ही ठाकुर जी के भोग में लग सकते हैं। कौए आदि के द्वारा काटा हुआ दागी फल न तो देव-पूजा में आ सकता है और न ब्राह्मण अपने कार्य में ही ला सकता है। इसी प्रकार, पवित्र हृदय बालकों या युवा पुरुषों को धर्म-पथ पर लाने की चेष्टा करना उचित है। जिस पुरुष के हृदय में एक बार भी विषय-बुद्धि प्रवेश कर गयी है, उसका धर्म-पथ पर चलना बड़ा ही कठिन हो जाता है।

तोते के गले में कण्ठी निकल जाने पर उसे फिर और नहीं पढ़ाया जा सकता। जब तक वह बच्चा रहता है, केवल तभी तक वह जो चाहो, पढ़ना सीख सकता है। इसी प्रकार, बूढ़े का मन सहज ही ईश्वर की ओर नहीं जाता, पर बाल्यावस्था में थोड़ी-सी चेष्टा से ही मन स्थिर रहता है।

एक सेर दूध में यदि केवल एक छटाँक पानी मिला हो, तो थोड़ी आँच में ही खोआ बनाया जा सकता है; परन्तु एक सेर में यदि तीन पाव पानी हो, तो आसानी से खोआ नहीं बन सकता, बहुत लकड़ी और आँच की आवश्यकता होती है। इसी प्रकार, बालक के मन में विषय-वासना बिलकुल कम होने के कारण उसका मन ईश्वर की ओर सरलतापूर्वक ढल जाता है। परन्तु बूढ़ों के मन में विषय-वासना खूब ठूँस-ठूँस कर भरी रहने के कारण उनका मन ईश्वर की ओर नहीं जा सकता।

जैसे कच्चा बाँस आसानी से झुकाया जा सकता है और पक्का बाँस झुकाये जाने पर टूट जाता है, वैसे ही बच्चों का मन आसानी से ईश्वर की ओर झुकाया जा सकता है परन्तु बूढ़ों के मन को यदि उस ओर झुकाने का प्रयत्न किया जाय, तो वे उस सत्संग को त्यागदेते हैं।

मैं इन सब युवकों को नारायण स्वरूप ही मानता हूँ। नरेन्द्र (बाद में स्वामी विवेकानन्द) के साथ मेरी पहली मुलाकात में ही मैंने उसे देह के प्रति सर्वथा उदासीन पाया। कभी-कभी मैं अकेले बैठकर नरेन को देखने के लिए रोया करता था।

युवकों का मन अभी भी संसार से कलुषित नहीं हुआ है, इसीलिए वे हृदय से इतने पवित्र हैं। इसके अलावा उनमें से कई नित्य मुक्त हैं; जन्म से ही वे भगवान् की ओर आकर्षित हुए हैं। यह मानो एक बगीचे में सफाई करते समय अचानक पानी के फौवारे को पाने के समान है। बिना प्रयत्न के ही जल उमड़ पड़ता है।

जानते हो, ये युवक कैसे हैं ? वे उन वृक्षों के समान है जो पहले फल देते हैं, बाद में फूल। इन युवकों को पहले भगवान का दर्शन हुआ है, बाद में वे उनकी महिमा सुनते हैं; और अन्त में उनमें विलीन हो जाते हैं।

जाग्रत देवता

—स्वामी विवेकानन्द

(९ जुलाई १८९७ ई० को अलमोड़े से एक अमेरिकन मित्र को लिखित 'The Living God' नामक कविता का अनुवाद। रामकृष्ण आश्रम, नागपुर द्वारा प्रकाशित कवितावली से संकलित।—सं०)

वह जो तुममें है और तुम से परे भी,
जो सबके हाथों में बैठकर काम करता है,
जो सबके पैरों में समाया हुआ चलता है,
जो तुम सबके घर में व्याप्त है,
उसी की आराधना करो और
अन्य प्रतिमाओं को तोड़ दो !

जो एक साथ ही ऊँचे पर और नीचे भी है;
पापी और महात्मा, ईश्वर और निकृष्ट कीट,
एक साथ ही है,
उसी का पूजन करो—
जो दृश्यमान है,
ज्ञेय है,
सत्य है,
सर्वव्यापी है,
अन्य सभी प्रतिभाओं को तोड़ दो !

जो अतीत जीवन से मुक्त,
भविष्य के जन्म-मरणों से परे है,
जिसमें हमारी स्थिति है
और जिसमें हम सदा स्थित रहेंगे,
उसी की आराधना करो,
अन्य सभी प्रतिमाओं को तोड़ दो !

ओ विमूढ़ ! जाग्रत देवता की उपेक्षा मत करो,
उसके अनन्त प्रतिबिम्बों से ही यह विश्व पूर्ण है !
काल्पनिक छायाओं के पीछे मत भागो,
जो तुम्हें विग्रहों में डालती है;
उस परम प्रभु की उपासना करो,
जिसे सामने देख रहे हो;
अन्य सभी प्रतिमाओं को तोड़ दो !

स्वामी विवेकानन्द तुम्हें सम्बोधित करते हैं

सुदीर्घ रजनी अब समाप्त होती हुई जान पड़ती है। महादुःख का प्राय: अंत ही प्रतीत होता है। महानिद्रा में निमग्न शव मानो जागृत हो रहा है। इतिहास की बात तो दूर रही, जिस सुदूर अतीत के घनांधकार को भेद करने में अनुश्रुतियाँ भी असमर्थ हैं, वहीं से एक आवाज हमारे पास आ रही है। ज्ञान, भक्ति और कर्म के अनंत हिमालयस्वरूप हमारी मातृभूमि भारत की हर एक चोटी पर प्रतिध्वनित होकर यह आवाज मृदु, दृढ़, परन्तु अभ्रांत स्वर में हमारे पास तक आ रही है। जितना समय बीतता है, उतनी ही वह और भी स्पष्ट तथा गंभीर होती जाती है—और देखो, वह निद्रित भारत अब जागने लगा है। मानो हिमालय के प्राणप्रद वायु-स्पर्श से मृतदेह के शिथिलप्राय अस्थि-मांस तक में प्राण-संचार हो रहा है। जड़ता धीरे-धीरे दूर हो रही है। जो अंधे हैं, वे ही देख नहीं सकते और जो विकृत-बुद्धि हैं वे ही समझ नहीं सकते कि हमारी मातृभूमि अपनी गंभीर निद्रा से अब जाग रही है। अब कोई उसे रोक नहीं सकता। अब यह फिर सो भी नहीं सकती। कोई वाह्य शक्ति इस समय इसे दबा नहीं सकती क्योंकि यह असाधारण शक्ति का देश अब जागकर खड़ा हो रहा है।

भारतवर्ष का पुनरुत्थान होगा, पर वह शारीरिक शक्ति से नहीं, वरन् आत्मा की शक्ति द्वारा। वह उत्थान विनाश की ध्वजा लेकर नहीं, वरन् शांति और प्रेम की ध्वजा से...मैं अपने सामने यह एक सजीव दृश्य अवश्य देख रहा हूँ कि हमारी यह वृद्ध माता पुन: एक बार जागृत होकर अपने सिंहासन पर नवयौवन-पूर्ण और पूर्व की अपेक्षा अधिक महामहिमान्वित होकर विराजी है। शांति और आशीर्वाद के वचनों के साथ सारे संसार में उसके नाम की घोषणा कर दो।

एक नवीन भारत निकल पड़े—निकले हल पकड़-कर, किसानों की कुटी भेदकर, मछुआ, मोची, मेहतरों की झोपड़ियों से। निकल पड़े बनियों की दुकानों से, भुजवा के भाड़ के पास से, कारखाने से, हाट से, बाजार से। निकले झाड़ियों, जंगलों, पहाड़ों, पर्वतों से।

क्या भारत मर जाएगा? तब तो संसार से सारी आध्यात्मिकता का समूल नाश हो जायगा, सारे सदा-चारपूर्ण आदर्श जीवन का विनाश हो जायगा, धर्मों के प्रति सारी मधुर सहानुभूति नष्ट हो जायगी, सारी भावुकता का भी लोप हो जायगा। और उसके स्थान में कामरूपी देव और विलासितारूपी देवी राज्य करेगी। धन उनका पुरोहित होगा। प्रतारणा, पाशविक बल और प्रतिद्वंदिता, ये ही उनकी पूजापद्धति होगी और मानवता उनकी बलिसामग्री हो जायगी। ऐसी दुर्घटना कभी हो नहीं सकती।

भारत के राष्ट्रीय आदर्श हैं : त्याग और सेवा। आप इन धाराओं में तीव्रता उत्पन्न कीजिए, और शेष सब अपने आप ठीक हो जायगा। तुम काम में लग जाओ; फिर देखोगे इतनी शक्ति आयेगी कि तुम उसे संभाल न सकोगे। दूसरों के लिए रत्ती भर काम करने से भीतर की शक्ति जाग उठती है। दूसरों के लिए रत्ती भर सोचने से धीरे-धीरे हृदय में सिंह का सा बल आ जाता है। तुम लोगों से मैं इतना स्नेह करता हूँ, परन्तु यदि तुम लोग दूसरों के लिए परिश्रम करते-करते मर भी जाओ तो भी यह देखकर मुझे प्रसन्नता ही होगी।

केवल वही व्यक्ति सब की अपेक्षा उत्तम रूप से

कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थी है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायगा, तो वह भी एक बुद्ध बन जायगा, और उसके भीतर से ऐसी शक्ति प्रकट होगी, जो संसार की अवस्था को संपूर्ण रूप से परिवर्तन कर सकती है।

जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस आदमी को विश्वासघातक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु जो उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता! वे लोग जिन्होंने गरीबों को कुचलकर धन पैदा किया है और अब ठाठ-बाट से अकड़कर चलते हैं, यदि उन बीस करोड़ देशवासियों के लिए जो इस समय भूखे और असभ्य बने हुए हैं, कुछ नहीं करते तो वे घृणा के पात्र हैं।

हमेशा बढ़ते चलो! मरते दम तक गरीबों और पददलितों के लिए सहानुभूति—यही हमारा आदर्श-वाक्य है। वीर युवको! बढ़े चलो! ईश्वर के प्रति आस्था रखो। किसी चालबाजी की आवश्यकता नहीं, उससे कुछ नहीं होता। दुखियों का दर्द समझो और ईश्वर से सहायता की प्रार्थना करो—वह अवश्य मिलेगी।...युवको। में गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ।...और तब प्रतिज्ञा करो कि अपना सारा जीवन इन तीस करोड़ लोगों के उद्धार-कार्य में लगा दो, जो दिनों दिन अवनति के गर्त में गिरते जा रहे हैं। यदि तुम सचमुच मेरी संतान हो, तो तुम किसी वस्तु से न डरोगे, न किसी बात पर रुकोगे। तुम सिंहतुल्य होगे। हमें भारत को और पूरे संसार को जगाना है।

हे भाइयो, हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। 'पहले से ही बड़ी-बड़ी योजनाएँ न बनाओ, धीरे-धीरे कार्य प्रारंभ करो—जिस जमीन पर खड़े हो, उसे अच्छी तरह से पकड़कर क्रमशः ऊँचे चढ़ने की चेष्टा करो।

जागो, जागो, लम्बी रात बीत रही है, सूर्योदय का प्रकाश दिखाई दे रहा है। ऊँची तरंग उठ रही है, उसका भीषण वेग किसी से न रुक सकेगा।

तुम तो ईश्वर की संतान हो, अमर आनंद के भागी हो, पवित्र और पूर्ण आत्मा हो। अतएव तुम कैसे अपने को जबरदस्ती दुर्बल कहते हो? उठो, साहसी बनो, वीर्यवान होओ। सब उत्तरदायित्व अपने कंधे पर लो—यह याद रखो कि तुम स्वयं अपने भाग्य के निर्माता हो। तुम जो कुछ बल या सहायता चाहो, सब तुम्हारे ही भीतर विद्यमान हैं।

एक बात पर विचार करके देखिये, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्यों को बनाते हैं? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्यों को पैदा करता है? मनुष्य कीर्ति और नाम पैदा करता है या कीर्ति और नाम मनुष्य पैदा करते हैं? मेरे मित्रो, पहले, मनुष्य बनिये, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी। परस्पर के घृणित द्वेषभाव को छोड़िये...और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्वीर्य का अवलम्बन कीजिये। आपने मनुष्ययोनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ जाइये।

जाति तो व्यक्तियों की केवल समष्टि है। शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को उपयुक्त बनाने के सिवाय मेरी और कोई उच्चाकांक्षा नहीं है। अपनी चिंता हमें स्वयं ही करनी है। इतना तो हम कर ही सकते हैं।...क्योंकि दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने आपको पवित्र बना लें! आओ, हम अपने आपको पूर्ण बना लें!

इसलिए, मेरे मित्रो, मेरा विचार है कि मैं भारतवर्ष में कितने ही ऐसे शिक्षालय स्थापित करूँ जहाँ हमारे नवयुवक अपने शास्त्रों के ज्ञान में शिक्षित होकर भारत तथा भारत के बाहर अपने धर्म का प्रचार कर सकें। केवल मनुष्यों की आवश्यकता है; और सब कुछ

हो जायगा, किन्तु आवश्यकता है वीर्यवान, तेजस्वी, श्रद्धासम्पन्न और अन्त तक कपटरहित नवयुवकों की। इस प्रकार के सौ नवयुवकों से संसार के सभी भाव बदल दिये जा सकते हैं। और सब चीजों की अपेक्षा इच्छाशक्ति का अधिक प्रभाव है। इच्छाशक्ति के सामने और सब शक्तियाँ दब जायेंगी, क्योंकि इच्छाशक्ति साक्षात् ईश्वर से निकलकर आती है। विशुद्ध और दृढ़ इच्छाशक्ति सर्वशक्तिमान है।

जो सच्चे हृदय से भारतीय कल्याण का व्रत ले सकें तथा उसे ही जो अपना एकमात्र कर्तव्य समझें—ऐसे युवकों के साथ कार्य करते रहो। उन्हें जागृत करो, संगठित करो तथा उनमें त्याग का मंत्र फूँक दो। भारतीय युवकों पर ही यह कार्य संपूर्ण रूप से निर्भर है।

मैंने तो इन नवयुवकों का संगठन करने के लिए जन्म लिया है। यही क्या, प्रत्येक नगर में सैकड़ों और मेरे साथ सम्मिलित होने को तैयार हैं, और मैं चाहता हूँ कि इन्हें अप्रतिहत गतिशील तरंगों की भाँति भारत में सब ओर भेजूँ, जो दीन-हीनों एवं पददलितों के द्वार पर सुख, नैतिकता, धर्म एवं शिक्षा उँड़ेल दें। और इसे मैं करूँगा, या मरूँगा।

अनेक लड़कों की आवश्यकता है जो सब कुछ छोड़-छाड़कर देश के लिए जीवनोत्सर्ग करें। पहले उनका जीवन निर्माण करना होगा, तब कहीं काम होगा।

मैं सुधार में विश्वास नहीं करता, मैं विश्वास करता हू स्वाभाविक उन्नति में। मैं अपने को ईश्वर के स्थान पर प्रतिष्ठित कर अपने समाज के लोगों के सिर पर यह उपदेश "तुम्हें इस भाँति चलना होगा, दूसरे प्रकार नहीं"—मढ़ने का साहस नहीं कर सकता। मैं तो सिर्फ उस गिलहरी की भाँति होना चाहता हूँ जो श्रीरामचन्द्र-जी के पुल बनाने के समय थोड़ा बालू देकर—अपना भाग पूरा कर संतुष्ट हो गयी थी। यही मेरा भी भाव है।

जातीय जीवन को जिस ईंधन की जरूरत है उसे देते जाओ, वह अपने ढ़ंग से उन्नति करता जायेगा, कोई उसकी उन्नति का मार्ग निर्दिष्ट नहीं कर सकता।

सबसे पहले हमें अपनी जाति की आध्यात्मिक और लौकिक शिक्षा का भार ग्रहण करना होगा। क्या तुम इस बात की सार्थकता को समझ रहे हो? तुम्हें इस विषय पर सोचना-विचारना होगा, इस पर तर्क-वितर्क और आपस में परामर्श करना होगा, दिमाग लगाना होगा और अन्त में उसे कार्य-रूप में परिणत करना होगा। जब तक तुम यह काम पूरा नहीं करते हो, तब तक तुम्हारी जाति का उद्धार होना असंभव है।

मेरा कहने का यह मतलब नहीं कि दूसरी चीज की आवश्यकता ही नहीं। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं कि राजनीतिक या सामाजिक उन्नति अनावश्यक है, किन्तु मेरा तात्पर्य यही है और मैं तुम्हें सदा इसकी याद दिलाना चाहता हूँ कि ये सब यहाँ गौण विषय हैं, मुख्य विषय धर्म है। भारतीय मन पहले धार्मिक है, फिर कुछ और। हमारी आध्यात्मिकता ही हमारा जीवनरक्त है। यदि यह साफ बहता रहे, यदि यह शुद्ध एवं सशक्त बना रहे, तो सब कुछ ठीक है। राजनीतिक, सामाजिक, चाहे जिस किसी तरह की ऐहिक त्रुटियाँ हो, चाहे देश की निर्धनता ही क्यों न हो यदि खून शुद्ध है तो सब सुधर जायेंगे। इस भाँति भारत में सामाजिक सुधार का प्रचार तभी हो सकता है, जब यह देखा जाय कि उस नयी प्रथा से आध्यात्मिक जीवन की उन्नति में कौन-सी विशेष सहायता मिलेगी। राजनीति का प्रचार करने के लिए हमें दिखाना होगा कि उसके द्वारा हमारे राष्ट्रीय जीवन की आकांक्षा—आध्यात्मिक उन्नति—की कितनी अधिक पूर्ति हो सकेगी।

केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही ऐसा है, जो हमारे दुःखों को सदा के लिए नष्ट कर दे सकता है; अन्य किसी प्रकार के ज्ञान से आवश्यकताओं की पूर्ति केवल अल्प समय के लिए ही होती है।

एक बात और कहकर मैं समाप्त करूँगा। लोग स्वदेश-भक्ति की चर्चा करते हैं। मैं स्वदेशभक्ति में

विश्वास करता हूँ, पर स्वदेशभक्ति के सम्बन्ध में मेरा एक आदर्श है। बड़े काम करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। बुद्धि और विचार-शक्ति हम लोगों की थोड़ी सहायता कर सकती है। वह हमको थोड़ी दूर अग्रसर करा देती है और वहीं ठहर जाती है; किन्तु हृदय के द्वारा ही महाशक्ति की प्रेरणा होती है। प्रेम असंभव को संभव कर देता है। जगत के सब रहस्यों का द्वार प्रेम ही है। अतः मेरे भावी संस्कार को, मेरे भावी देशभक्तों, तुम हृदयवान बनो। क्या तुम हृदय से समझते हो कि देव और ऋषियों की करोड़ों सन्तान पशुतुल्य हो गयी हैं? क्या हृदय में अनुभव करते हो कि करोड़ों आदमी आज भूखे मर रहे हैं और वे कई शताब्दियों से इस भाँति भूखों मरते आ रहे हैं? क्या तुम समझते हो कि अज्ञान के काले बादल ने सारे भारत को आच्छन्न कर लिया है? क्या तुम यह सब समझकर कभी अस्थिर हुए हो? क्या तुम कभी इससे अनिद्रित हुए हो? क्या कभी यह भावना तुम्हारे रक्त में मिलकर तुम्हारी धमनियों में बही है? क्या वह तुम्हारे हृदय के स्पन्दन से कभी मिली है? क्या उसने कभी तुम्हें पागल बनाया है? क्या कभी तुम्हें निर्धनता और नाश का ध्यान आया है? क्या तुम अपने नाम-यश, सम्पत्ति, यहाँ तक कि अपने शरीर को भी भूल गये हो? क्या तुम ऐसे हो गये हो? यदि हो, तो जानो कि तुमने स्वदेशभक्ति की प्रथम सीढ़ी पर पैर रखा है। जैसा तुममें से अधिक लोग जानते हैं, मैं धार्मिक महासभा के लिए अमेरिका नहीं गया था, किन्तु देश के जन-साधारण की दुर्दशा के प्रतिकार करने का भूत मुझमें— मेरी आत्मा में घुस गया था। मैं अनेक वर्ष तक समग्र भारत में घूमता रहा, पर अपने स्वदेशवासियों के लिए कार्य करने का मुझे कोई अवसर नहीं मिला, इसीलिए मैं अमेरिका गया। तुममें से अधिकांश जो मुझे उस समय जानते थे, इस बात को अवश्य जानते हैं। इस धार्मिक महासभा की कौन परवाह करता था? यहाँ मेरे रक्तमांसस्वरूप जनसाधारण की दशा हीन होती जाती थी, उनको कौन खबर ले? स्वदेशहितैषी होने की यह मेरी पहली सीढ़ी है।

उठो, जागो, स्वयं जगकर औरों को जगाओ। अपने नर-जन्म को सफल करो। "उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत— उठो, जागो और तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय"।

"यदि शान्ति चाहो, तो किसी का दोष मत देखो। दोष देखना अपना। संसार को अपना बना लेना सीखो, कोई पराया नहीं है, सारा संसार तुम्हारा ही है।"

—श्री श्रीमाँ सारदा देवी

स्वामी विवेकानन्द का आशीर्वाद तुम सब पर बरसे

--श्रीमत् स्वामी वीरेश्वरानन्द

[रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के दशम महाध्यक्ष परम पूजनीय स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज ने दिनांक 12 जनवरी 1985 को बेलुड़ मठ में आयोजित राष्ट्रिय युवा दिवस पर लगभग 5000 युवक-युवतियों के बीच जो भाषण दिया था, उसे बंगला पत्रिका 'उद्बोधन' से साभार गृहीत तथा अनूदित किया गया है। यह स्मरणीय है कि पू० महाराज जी का यह अंतिम सार्वजनिक भाषण था, क्योंकि 13 मार्च 1985 में उन्होंने महासमाधि ले ली। अनुवादक हैं, रामकृष्ण मिशन, राँची के स्वामी निखिलेश्वरानन्द।—सं०]

युवा बन्धुगण,

आज तुमलोग एकत्रित क्यों हुए हो? क्योंकि तुमलोग स्वामी विवेकानन्द को चाहते हो, उन्होंने जो कुछ कहा है, वह तुमलोगों को अच्छा लगता है; इसके अतिरिक्त भी उनके संबंध में तुमलोगों को और भी बहुत कुछ जानने की इच्छा है; राष्ट्र को किस प्रकार से उन्नत किया जाय उसके संबंध में स्वामी विवेकानन्द जो कुछ कह गये हैं वह भी तुम जानना चाहते हो। इन सब विषयों को तुमलोग और भी सुनोगे, जानोगे, इसी आशा से तुमलोग यहाँ एकत्रित हुए हो। मेरा यह दृढ़ विश्वास है, तुमलोग आज बहुत कुछ सीख कर जाओगे।

तुमलोगों को मुझे एक बात बहुत जोर देकर कहनी है। वह है, भारतवर्ष की उन्नति अन्य किसी पथ से नहीं होगी, होगी केवल मात्र धर्म के माध्यम से। चिरकाल तक उसी प्रकार हुआ है, एवं भविष्य में भी होगा। समझना होगा कि इसी कारण से दो महापुरुष---श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द इस देश में जन्मे थे। इनको छोड़कर हमलोग किसी भी प्रकार उन्नति नहीं कर पायेंगे। इस परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द को युवावर्ग का नेता निर्वाचित कर आज उनके जन्मदिन को राष्ट्रीय युवा दिवस के रूप में पालन करना, हमलोगों के लिए एक हर्ष का विषय है, गर्व का विषय है। लोग कहते हैं, धर्म, धर्म करके भारत की यह दुर्दशा हुई है। यह बात ठीक नहीं है। हमलोग ठीक प्रकार से धर्म का पालन नहीं कर पाये। धर्म को समझ नहीं पाये। सच्चा धर्म क्या है, यह हमलोग भूल गये थे। इसीलिए हमलोगों की भूल और भ्रान्ति को बता देने के लिए, हमलोगों को ठीक पथ दिखाने के लिए श्रीरामकृष्ण आये थे। और उन्हीं के निर्देश तथा उपदेश को स्वामी विवेकानन्द ने सर्वत्र फैलाया है।

अब पूछ सकते हो, धर्म द्वारा किस प्रकार देश की उन्नति होगी, पूछ सकते हो, समाज व्यवस्था में आज जो सड़ाँध आ गयी है, वह दूर किस प्रकार होगी? क्या तुम्हारे घर में बैठे-बैठे माला जपने से होगी? स्वाभाविक है, ये सब बातें उठ सकती हैं। इन सब समस्याओं के समाधान के लिए ठाकुर (श्रीरामकृष्ण) तथा स्वामीजी, (स्वामी विवेकानन्द) हमलोगों को दे गये हैं---एक नवीन मंत्र। वह नवीन मंत्र क्या है? नवीन मंत्र कहता है, जीव की शिवज्ञान से सेवा करनी होगी। मनुष्य की शिवज्ञान से सेवा कर सकने से सभी कर्मों के साथ हम भगवान को संलग्न कर सकेंगे, तथा हम जो कुछ भी करेंगे वह भगवान् के लिए ही करेंगे। इस दृष्टिकोण को लेकर दैनन्दिन कार्य कर सकने से भगवान

को भूलने की कोई संभावना नहीं रहेगी। जिस प्रकार जप-ध्यान के समय भगवान् पर मन स्थिर कर एकाग्र होकर चिन्तन हम करते हैं, उसी प्रकार उसी भगवान को यदि हम प्रत्येक मनुष्य में देखना सीखें, तो कार्य के बीच भी हमलोग भगवान् को भूलेंगे नहीं। इस प्रकार ज्ञान व कर्म के बीच जो द्वन्द्व था, उसे दूर कर ठाकुर तथा स्वामीजी ने इनके बीच समन्वय ला दिया है। नवीन मंत्र सिखाता है--- धर्म के माध्यम से कर्म हो सकता है। फिर कर्म के माध्यम से भी मनुष्य धर्म की ओर अग्रसर हो सकता है। यह मंत्र ही इस युग के लिए सर्वोपयोगी मंत्र है।

इसको छोड़कर भी स्वामीजी और भी बहुत-सी बातें हमारी उन्नति के लिए, समाज की उन्नति के लिए कह कर गये हैं। किन्तु यह समझना उचित होगा कि उन्होंने यह सब कहा था---एक विशेष दृष्टि से। विशेष दृष्टि का क्या अर्थ है? वे थे ब्रह्मज्ञ पुरुष। वे आत्मज्ञान में प्रतिष्ठित थे। उसी आत्मज्ञान के आलोक द्वारा उन्होंने सभी कुछ जाँच (Scan) कर देखा है। उन्होंने देखा है—समाज को, देखा है---समाज के भीतर क्या दोष-त्रुटियाँ हैं। और आत्मा का जो ज्ञान है, जो आलोक है, उसी आलोक के द्वारा समस्त समाज का विश्लेषण कर वे समाज की सर्वांगीण उन्नति का उपाय कह कर गये हैं। इस वजह से हमलोगों को स्वामीजी को भलीभाँति पढ़कर समझना होगा। शास्त्र में भी है— प्रथम 'श्रोतव्य'—सुनना होगा। उसके बाद 'मन्तव्य'— भलीभाँति चिन्तन करना होगा। उसके बाद 'निदि-यासितव्य'---ध्यान करना होगा। इसीलिए कहता हूँ— पहले स्वामीजी के संबंध में सुनकर स्वामीजी का पाठ ग्रहण करना होगा, उसके बाद उस पर चिन्तन करो। बाहर जो सब विचारधाराएँ हैं, उनके साथ तुलना करके देखो। जिस प्रकार कसौटी का पत्थर देखता है कि सोना कितना खरा है, उसी प्रकार बाहर के आदर्शों को जाँच कर देखो। भलीभाँति देखो, हमारे आदर्शों में कितना खरा सोना है, उसके बाद कार्य में लगो। इस प्रकार तुम्हें अग्रसर होना होगा। इसके अलावा भी स्वामीजी कहकर गये हैं कि देश की उन्नति करने के लिए क्या-क्या करना चाहिए। इस बारे में कुछ बातें मैं तुमलोगों से कह देता हूँ। सर्वप्रथम उन्होंने कहा है कि 'चरित्र-गठन' करना होगा, चरित्र गठित नहीं होने से कोई भी कार्य नहीं होगा। चरित्र-गठन करने के लिए Spirituality (आध्यात्मिकता) की आवश्यकता है। इसके भी पहले धर्म का पालन करने के लिए हमें चाहिए दृढ़ बलिष्ठ शरीर। इसीलिए स्वामीजी कहते हैं---तुम लोग फुटबॉल अच्छी तरह से खेलो, तब गीता को अच्छी तरह से समझ सकोगे। इसका अर्थ है, शरीर में यथेष्ट शक्ति नहीं होने से यह सब चिन्तन करना, ध्यान करना या बड़ा-बड़ा कार्य करना, असंभव हो जायगा। इसी-लिए स्वामीजी कहते हैं, शरीर को सशक्त करना होगा। इसी कारण से आयुर्वेद शास्त्र के लेखक, शास्त्र लिखते समय प्रथम ही भूमिका करते हैं, तुम आयुर्वेद के संबंध में एक मामूली medical (मेडिकल) पुस्तक क्यों लिख रहे हो? तुम्हारा आदर्श तो धर्म है। वे कारण बताते हैं, "शरीरम् आद्यम् खलुधर्म साधनम्" – शरीर ठीक नहीं होने से कोई भी धर्म नहीं होगा। शरीर के सबल होने पर बहुत ध्यान-जप किया जा सकता है। इसी-लिए स्वामीजी कहते हैं, दृढ़ शरीर की आवश्यकता है। बलिष्ठ लोगों की आवश्यकता है। तभी ठीक-ठीक उन्नति हो सकती है। और चरित्र-गठन के बारे में भी कहा है। स्वयं पर आशा-भरोसा न रख सकने पर कोई भी कार्य नहीं होगा। मन में स्थिर विचार होना चाहिए कि मैं वह कार्य करके ही रहूँगा। मैं ठीक से कर सकूँगा। इस प्रकार की भावना मन में दृढ़ विश्वास ला देती है। इस प्रकार के लोगों द्वारा ही कार्य होता है। और स्वामीजी जो सबसे अधिक जोर देकर कह गये हैं—वह है त्याग। हमारे देश में चिरकाल से त्याग की साधना चली आ रही है। स्वामीजी आपस में परस्पर झगड़ा, ईर्ष्या, द्वेष इन सब का वर्जन कर प्रेम का प्रचार व प्रसार करने को कह गये हैं। आपस में प्रेम की आवश्यकता है। विशेषतः जो लोग समाज में

पीछे पड़ गये हैं, जो अस्पृश्य हैं, अशिक्षित हैं, जिनकी ओर हमने इतने दिनों तक लक्ष्य ही नहीं किया, उनके दुःख कष्टों को जानना होगा। यह समझना होगा कि उन लोगों के परिश्रम के फलस्वरूप ही हमलोग बड़े हुए हैं; इस विषय को लक्ष्य कर स्वामीजी ने कहा है, उनलोगों की उन्नति न होने पर, उनलोगों को समाज में यथायोग्य मर्यादा न दे सकने पर भारतवर्ष उन्नत नहीं हो सकता। इस बात को कहकर उन्होंने अपने 'वर्तमान भारत' नामक निबन्ध में निर्देश दिया है— किस प्रकार समस्त भारतवर्ष के लोगों को अपना भाई कहकर अपना कर लेना होगा। तुमलोग उसे पढ़कर देखना। उन सबको पढ़कर तुमलोगों को अपना मन तैयार करना होगा, उसके बाद तुमलोग कार्य में अग्रसर होओगे।

अंत में तुमलोगों को एक बात कहता हूँ। तुमलोगों ने, हो सकता है, अनेक भाषण सुने हों, अनेक पुस्तकें पढ़ी हों, अनेक प्रकार से चिन्तन भी किये हों, किन्तु इससे कार्य अग्रसर नहीं होगा। अंग्रेजी में एक कहावत है—"An ounce of practice is more than a ton of talks" एक टन बातों से एक औंस कार्य अधिक महत्वपूर्ण है। इसीलिए कहता हूँ, तुमलोग यदि सामान्य सा भी कार्य कर सको, तो भी अच्छा है। तुमलोग जो लड़के-लड़कियाँ यहाँ आये हो, तुम्हारे आसपास जो अशिक्षित लोग हैं, उन्हें कुछ लिखना-पढ़ना सिखा सकते हो; उनलोगों को कुछ साफ-सुथरा रहना सिखा सकते हो, उनलोगों को कुछ अच्छी बातें सुनाकर, धर्म का उपदेश कर, उनलोगों की कुछ सहायता कर सकते हो। वस्तुतः बड़ी-बड़ी संस्था (Organisation) करके संस्था के माध्यम से, ये सब कार्य कर सकते हो; किन्तु बड़ी सी संस्था छोड़कर यह कार्य नहीं हो सकता, यह बात ठीक नहीं है। वास्तव में जो सहजसाध्य है, वह है, तुमलोग अपने चार-पाँच लोग इकट्ठे होकर किस प्रकार गाँव की उन्नति होगी, इसके बारे में सोच-विचार कर अनायास ही कार्य में अग्रसर हो सकते हो। इसीलिए तुमलोगों को विशेष करके कहता हूँ कि स्वामीजी की रचनाएँ पढ़कर, चिन्तन कर, उनके आदर्श के अनुसार कार्य न कर सकने पर क्या लाभ हुआ? स्वामीजी तुमलोगों से बहुत कुछ आशा कर गये हैं, और कह भी गये हैं कि उन्होंने जो कुछ चिन्तन-मनन किया है, वह सब उन्होंने युवावर्ग पर अर्पण कर दिया है। उत्तराधिकारी के रूप में वे सब स्वामीजी द्वारा कल्पित इन सब कार्यों का दायित्व वहन करेंगे, ऐसी आशा उन्होंने पाल रखी थी। आशा करता हूँ, तुमलोग स्वामीजी को निराश नहीं करोगे। इसीलिए, आज तुमलोग संकल्प ग्रहण करो कि स्वामीजी के कार्य में तुमलोग लग जाओगे, और स्वामीजी जिस पथ पर भारतवर्ष को ले जाना चाहते थे उसी पथ पर देश को अग्रसर करोगे।

तुमलोगों से मेरा यह निवेदन है कि आज यहाँ से जाने के पूर्व तुमलोग मन-ही-मन एक स्थिर संकल्प ग्रहण करोगे। देखोगे, जितना-ही स्वामीजी का कार्य करोगे, उतनी ही तुम्हारे भीतर की शक्ति खुल रही है। एक उदाहरण देता हूँ। एक युवक ने अकेले ही जंगल में जाकर आदिवासियों के बीच कार्य आरंभ किया था। उस समय उसके साथ कोई भी नहीं था। आज देखता हूँ, कई लोग, सरकारी लोग, गैर-सरकारी लोग, उसके पीछे दौड़ रहे हैं। कार्य काफी आगे बढ़ गया है। क्रमशः विराट् स्वरूप धारण कर रहा है। इसीलिए कहता हूँ, आत्मविश्वास रहने से तुमलोग सबकुछ कर सकोगे, इस बात को याद रखने से ही कार्य हो जायगा। स्वामीजी का आशीर्वाद तुम सभी पर बरसे। उनसे मेरी यही प्रार्थना है।

★

रामकृष्ण-विवेकानन्द के सन्देश और युवजन

—श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ,
हैदराबाद

[रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली द्वारा ९, १०, ११ सितम्बर, १९८२ ई० को आयोजित रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा सम्मेलन में रामकृष्ण मिशन के महा मनीषि प्रवक्ता श्रीमत् स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज द्वारा प्रदत्त उद्घाटन भाषण का टेप रेकार्ड किया गया था। उसी के आधार पर जो निबन्ध तैयार हुआ उसे "Eternal Values for a Changing Society, Vol. II" में Great spiritual Teachers शीर्षक से संकलित किया गया। प्रस्तुत निबन्ध उसी का हिन्दी अनुवाद है जिसे लेखक द्वारा दी गयी लिखित अनुमति से प्रकाशित किया जा रहा है। अनुवादक हैं डॉ० केदारनाथ लाभ। —सं०]

१. प्रस्तावना

श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित युवा सम्मेलन में भाग लेने के अनुपम उद्देश्य से हमलोग यहाँ एकत्र हुए हैं। रामकृष्ण मिशन के दिल्ली केन्द्र द्वारा इस में भाग लेने तथा इसका उद्घाटन करने के आमंत्रण पर मैं हैदराबाद से सीधे यहाँ आया हूँ। श्री रामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा संदेश की हमारे युवजनों के लिए स्पष्ट प्रसांगिकता है। हमारे अधिकांश युवक यह नहीं जानते कि वह प्रासंगिकता क्या है; किन्तु जब उन्हें इस सम्बन्ध में सुनने का अवसर प्राप्त होता है, वे पूरे अंतःकरण से अपनी प्रतिक्रिया अभिव्यक्त करते हैं। इस विषय में अपने युवजनों से मैं कभी-कभी पत्र प्राप्त करता हूँ। विवेकानन्द के सन्देश पर व्याख्यान सुनने के बाद वे लिखते हैं: 'हमलोग इसके पूर्व यह नहीं जानते थे कि उनका ऐसा गंभीर सन्देश है। यह कितना मनोरम-मोहक है, कितना तर्कसंत और व्यावहारिक!' ऐसी अभ्युक्तियाँ सिद्ध करती हैं कि आगत दशकों में जब इस संदेश से हमारे अधिक से अधिक लोग अवगत होंगे, तब यह संदेश हमारे युवाओं के जीवन और चरित्र का स्वस्थ रूप से गठन करने में महत भूमिका का निर्वाह करनेवाला होगा। यह सम्मेलन इस दिशा में एक लघु प्रयास है और मैं इसमें भाग लेने तथा इसका उद्घाटन करने में प्रसन्नता का अनुभव करता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द का अपने देश के युवाओं में भारी विश्वास था। सामान्यतः हमारे अधिकांश युवकों में आदर्श का भाव है और, अब, उनमें प्रचंड ऊर्जा तथा शिक्षा भी है। स्वामीजी ने अनुभव किया था कि वे नवीन भारत के निर्माण में सक्षम हो सकेंगे और वे (स्वामी जी) प्रायः 'मनुष्य-निर्माणकारी तथा राष्ट्र-निर्माणकारी' शब्दों का प्रयोग किया करते थे। कुछ वर्ष पूर्व (सन् १९८० ई० में), मुश्किल से ५० या ६० पृष्ठों की, किन्तु प्रेरणादायी विचारों से परिपूर्ण 'Rebuild India' (नया भारत गढ़ो) नामक एक लघु पुस्तिका रामकृष्ण मिशन के द्वारा प्रकाशित की गयी थी। इसकी लाखों प्रतियाँ सारे भारतवर्ष में बेची गयीं; और भारत के पुनर्निर्माण के कार्य का विशेष अधिकार और दायित्व हमारे युवजनों का है।

२. युवजन और भारत का पुनर्निर्माण

तुम में से अधिकांश लोग, प्रायः ५०० से ६००, सारी दिल्ली से प्रतिनिधि के रूप में यहाँ एकत्र हुए हो, और तुम सब ३० वर्षों से कम वय के युवजन हो। कल्पना

करो कि इसका क्या अर्थ है, जब तुम यह अनुभव करते हो कि आगत ५० वर्षों में, तुम्हें अपने भारतवर्ष में रहने और उसके पुनर्निर्माण के लिए इतना प्रचुर अवसर प्राप्त हुआ है। एकबार जब तुम अपने मन को इस उद्देश्य के लिए नियोजित करते हो, एक प्रश्न उठता है'''भारत के पुनर्निर्माण के लिए कौन-सी योजनाएँ हैं ? जब तुम एक घर बनाना चाहते हो, तब तुम एक नक्शे की आवश्यकता का अनुभव करते हो। तुम किसी शिल्पी के समीप जाते हो जो इस विषय में पूर्ण जानकारी रखता है। अतएव, जब तुम एक युवक के रूप में भारत का पुनर्निर्माण करने की शुरुआत करते हो, तब निश्चय ही तुम्हें यह प्रश्न पूछना चाहिए : हमें कैसा भारत चाहिए ? उस भवन का शिल्प किस प्रकार का है ? और अपने देश के सन्दर्भ में यह बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि कुछ अन्य आधुनिक देशों की भाँति हमलोग किसी प्रस्थान रेखा से आरंभ नहीं कर रहे हैं।

उदाहरणार्थ सत्रहवीं और अट्ठारहवीं शताब्दी में, अमेरिका में पूछने को ऐसे प्रश्न नहीं थे। वहाँ के लोग विरलता से बसी आबादी वाले महाद्वीप में सर्वथा एक नयी संस्कृति, एक नयी समान सभ्यता का निर्माण कर रहे थे। किन्तु भारत बिल्कुल भिन्न देश है। हमारे पास विगत पाँच हजार वर्षों का इतिहास एवं विभिन्न प्रकृतियों की विशाल आबादी है। इतिहास की एक सुदीर्घ अवधि, जिसका बहुलांश अत्यंत गौरवशाली-कीर्तिमय है, हमारे पीछे है। और हमारे इस लम्बे इतिहास ने इस दीर्घ अवधि में, प्रायः समस्त समकालीन सभ्यताओं को प्रभावित किया है। हमलोगों ने समग्र मानवता की समान विरासत—पदार्थ विज्ञान, राजनैतिक आर्थिक चिन्तन, कला तथा सब से बढ़कर विशुद्ध धर्म एवं दर्शन के क्षेत्रों में अपने हिस्से का दान किया है। हमारे विगत इतिहास की ये महत्तम देन हैं, और आधुनिक काल में भी भारत ने संतों, चिंतकों और नेतृत्व करनेवालों की एक पूरी मंडली ही उत्पन्न की है। और हमारे युवकों को भावी भारत के निर्माण में अपने प्राचीन एवं अर्वाचीन महान पूर्वजों के गरिमामय कार्यों को ध्यान में अवश्य रखना चाहिए। हमें उनके कार्यों को निरन्तर बनाये रखना है तथा एक महत्तर एवं स्वस्थतर भारत का निर्माण करना है। स्वभावतः, ऐसा कार्य केवल राष्ट्र का निर्माण करना नहीं, बल्कि राष्ट्र का पुनर्निर्माण करना हो सकता है। और इस प्रक्रिया में, उस विरासत के कुछ हिस्सों को जो अप्रासंगिक, निरर्थक तथा हमारी प्रगति के बाधक हो गये हैं, काटना पड़ सकता है। इसे करने के लिए, हमें स्पष्ट चिन्तन, विवेकपूर्ण निर्णय तथा साहस करने की जरूरत है, लेकिन ऐसा करने के समय, हमें अपनी राष्ट्रीय संस्कृति एवं जीवन के मूलभूत तत्वों को सुरक्षित एवं सुदृढ़ रखना है; और हमलोगों को भारतीय एवं पश्चिमी दोनों क्षेत्रों की वर्त्तमानकालीन उपलब्धियों का लाभ उठाना है, तथा उनके उन तत्वों का समन्वय करना है जो स्वस्थ और सबल हैं, तभी हमलोग इन सबके आलोक में भारत का पुनर्निर्माण कर सकते हैं।

इस विषय में हमें मार्ग-दर्शन की आवश्यकता है। ऐसा नक्शा तैयार करने के लिए, जिसे हमारे युवजन कुशलता, ऊर्जा और समर्पण के भाव से कार्य में परिणत कर सकें, ऐतिहासिक दृष्टि एवं परिप्रेक्ष्य से सम्पन्न एक महान् दूरदर्शी शिल्पी की सहायता लेने की हमें आवश्यकता है। वह शिल्पी स्वामी विवेकानन्द है। स्वामी विवेकानन्द इस विषय में अपने **'वेदान्त का उद्देश्य'** (विवेकानन्द साहित्य, पंचम खण्ड, पृ० ९२, १९७३ संस्करण) नामक व्याख्यान में जो कहते हैं उसे कृपापूर्वक सुनो :

'मैं किसी क्षणिक समाज-सुधार का प्रचारक नहीं हूँ। मैं समाज के दोषों का सुधार करने की चेष्टा नहीं कर रहा हूँ। मैं तुमसे केवल इतना ही कहता हूँ कि तुम आगे बढ़ो और हमारे पूर्वपुरुष समग्र मानव जाति की उन्नति के लिए जो सर्वाङ्ग सुन्दर प्रणाली बता गये हैं, उसी का अवलम्बन कर उनके उद्देश्य को सम्पूर्ण रूप से कार्य में परिणत करो। तुमसे मेरा कहना यही है कि तुम

लोग मानव के एकत्व और उसके नैसर्गिक ईश्वरत्व-भाव-रूपी वेदान्ती आदर्श के अधिकाधिक समीप पहुँचते जाओ।'

३. आधुनिक युग के स्वरूप-गठन में श्रीरामकृष्ण की भूमिका

जब तुम इस पद्धति से सोचोगे और प्रश्न करोगे तभी तुम रामकृष्ण और विवेकानन्द के जीवन और सन्देश के महत्व को जान सकोगे। भारत एवं पाश्चात्य दोनों जगतों के महान आचार्यों, महान चिन्तकों और श्रेष्ठ लेखकों ने आधुनिक युग के पुनर्गठन में रामकृष्ण और विवेकानन्द की देन की मुक्त कंठ से घोषणा की है। हमें इन सब को अवश्यमेव समझना चाहिए। और इन महान् आधुनिक चिन्तकों की कुछ अभ्युक्तियाँ हमलोगों के देश और आधुनिक युग के पुनर्गठन में इसकी भूमिका के प्रति भी महान् प्रशस्तियाँ हैं। तुमलोग गाँधीजी, नेहरूजी और रामकृष्ण-विवेकानन्द के प्रति कितनी ही प्रशस्तियाँ पढ़ते हो! वे बताती हैं कि रामकृष्ण-विवेकानन्द से न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण आधुनिक सभ्यता को विचारों और आदर्शों और मानव के विकास और पूर्णता के लिए प्रेरणा के रूप में बहुत कुछ प्राप्त करना है।

महान् अँग्रेज इतिहासवेत्ता, स्व० ऑर्नल्ड टोयनवी, कुछ वर्ष पहले, १९५० के दशक में, दिल्ली आये थे और मेरे आमंत्रण पर मेरी अध्यक्षता में इसी ठसाठस भरे सभामंडल में उन्होंने भाषण दिया था। उस समय उन्होंने मुझसे दयापूर्वक The Gospel of Sri Ramakrishna (श्रीरामकृष्ण वचनामृत) नामक महत्तम ग्रंथ की एक प्रति उपहार स्वरूप स्वीकार की थी। कुछ वर्षों बाद, १९६४ ई० में रामकृष्ण वेदान्त केन्द्र, लंदन के तत्कालीन प्रधान दिवंगत स्वामी धनान्द द्वारा लिखित और उसी केन्द्र द्वारा प्रकाशित ग्रंथ Sri Ramakrishna : His Uuique Message (श्रीरामकृष्ण के अद्भुत संदेश) की प्रस्तावना में उन्होंने भारत और श्रीरामकृष्ण पर एक सुन्दर अभ्युक्ति प्रदान की थी; और एक राष्ट्र के रूप में हमलोग उस अभ्युक्ति पर न्यायोचित रूप से गर्व कर सकते हैं। किन्तु इसके योग्य होने के लिए यह अभ्युक्ति हम पर कितना गम्भीर दायित्व सौंपती है! श्रीरामकृष्ण पर विचार करते हुए तथा आधुनिक मनुष्य के आध्यात्मिक जीवन को सुदृढ़ करने और इस आधुनिक विश्व में विभिन्न धर्मों में आदर्श तालमेल के विषय में श्रीरामकृष्ण के जीवंत उदाहरण एवं उपदेशों के प्रसार एवं क्रियान्वयन के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए टोयनबी कहते हैं (वही, १९७० संस्करण):

'आचरणों में अभिव्यक्त श्रीरामकृष्ण का सन्देश अद्भुत था। यह सन्देश स्वयं हिन्दुत्व का शाश्वत संदेश था।........धर्म मात्र अध्ययन का विषय नहीं है; यह कुछ ऐसा है जिसे अनुभव किया और जिया जा सकता है, और यही वह क्षेत्र है जिसमें श्रीरामकृष्ण ने अपनी विलक्षणता प्रकट की। उन्होंने भारतीय धर्म और दर्शन के लगभग प्रत्येक प्रकार की यथाक्रम से साधना की, और उन्होंने इस्लाम तथा ईसाई धर्मों की भी साधना उनके धार्मिक क्रियाकलाप और अनुभव, वस्तुतः इस सीमा तक विस्तृत-व्यापक थे जो भारत या अन्यत्र कहीं, इसके पूर्व के किसी भी धर्मात्मा के द्वारा शायद उपलब्ध नहीं किये गये थे। श्रीरामकृष्ण ने उस काल और देश में अपने को अवतरित किया और अपना संदेश दिया जिस काल और देश में उनकी और उनके संदेश की आवश्यकता थी। यह सन्देश शायद ही किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा दिया जा सकता था जिसका हिन्दू धार्मिक परम्परा में पालन-पोषण और शिक्षण नहीं हुआ हो। श्रीरामकृष्ण का जन्म बंगाल में १८३६ ई० में हुआ था। उनका जन्म उस विश्व में हुआ था, जो पहलीबार अक्षरशः विश्व व्यापी रूप में एकीकृत हुआ था। आज, हमलोग विश्व इतिहासके इस संक्रांतिकाल में अब भी रह रहे हैं; किन्तु अब यह स्वयं स्पष्ट होने लगा है कि वह अध्याय जिसका पश्चिमी प्रारम्भ हुआ था, उसका यदि मानवजाति के आत्म-संहार में उपसंहार नहीं हुआ तो, भारतीय उपसंहार होना होगा।

मानव इतिहास के इस महान खतरे की घड़ी में, मानवजाति की मुक्ति का एक मात्र मार्ग भारतीय है। सम्राट् अशोक और महात्मा गाँधी के अहिंसा के सिद्धांत और श्रीरामकृष्ण के धर्मों की एकता के साक्ष्य में ही वह रुख और भाव हमलोग पाते हैं जो मानवजाति को एक परिवार के रूप में साथ-साथ बढ़ने को सम्भव बना सकते हैं—और, इस आणविक युग में, अपना विनाश करने से बचने के लिए एकमात्र यही विकल्प है।' (चिह्नित पंक्तियाँ टोयनबी की नहीं हैं)।

४. राष्ट्र-निर्माण में चरित्र ऊर्जा की महत् भूमिका

यह हमारे देश के प्रति, इसके अतीत और वर्त्तमान के प्रति, एक असाधारण प्रशस्ति है। उनकी इस प्रशस्ति का उनकी दृष्टि में क्या तात्पर्य था इसे हमें अवश्य ही समझना चाहिए। उनका तात्पर्य यह था कि इस आधुनिक विश्व की विकलताओं का समाधान भारत के पास है। किन्तु, स्मरण रखो कि यह भारत स्वयं ही इन्हीं विकलताओं से घिरा है। हमलोग भी हिंसा, अपराध, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता, साम्प्रदायिक संघर्ष आदि की समस्याओं से घिरे हैं। ये समस्याएँ हमारे युवजनों को कैसी चुनौती दे रही हैं? इन चुनौतियों के प्रति प्रत्येक युवक और युवती की कैसी प्रतिक्रिया होनी चाहिए? वे कैसे इनका मुकाबला करेंगे? मैं विश्वासपूर्वक तुम लोगों से कहता हूँ कि इस युग में, विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में जो शिक्षा तुम्हें मिली है या मिली थी—वे सब त्रुटिपूर्ण हैं। तुम लोग इसे भलीभाँति जानते हो कि यदि श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उपदेशों से तुमलोग स्वयं शिक्षा ग्रहण कर सको तो तुम सब चिंतन की अत्यंत स्पष्टता तथा मानवीय प्रेम की प्रचंड शक्ति प्राप्त कर सकोगे जो तुम्हें इन चुनौतियों का सामना करने और अत्यन्त स्वस्थ पद्धति पर अपने राष्ट्र का पुनर्निर्माण करने में सक्षम करेगी। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य में स्पष्ट चिन्तन तथा लोगों के प्रति—विशेषकर दरिद्रतम एवं दुर्बलतम लोगों के प्रति जाति, धर्म और लिंग का विचार किये बिना—प्रेम करने की प्रचुर प्रेरणा तुम्हें मिलेगी। वह हमारे वर्त्तमान युवजनों के लिए बहुत बड़ी शिक्षा होगी। अपनी युवावस्था में ही तुम्हें अपने को इन राष्ट्रीय तथा मानवीय आदर्शों एवं मूल्यों से उत्प्रेरित कर लेना चाहिए। ३० वर्ष की उम्र के पहले, ५ से ३० वर्षों की उम्र में, मनुष्य को प्रेरक साहित्य का अध्ययन तथा अपने भीतर छिपे हुए प्रचण्ड ऊर्जा-स्रोतों का विकास करना एवं उन्हें एक मानवीय दिशा प्रदान करनी चाहिए। समग्र विश्व को आज ऐसी ही युवा-शक्ति की आवश्यकता है; इसे चरित्रऊर्जा कहा जाता है। इसे राष्ट्र-निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है। हमारे पास अर्थ-शक्ति, सौर-ऊर्जा, परमाणु-ऊर्जा और कई अन्य प्रकार की ऊर्जाएँ हैं, किन्तु एक ऊर्जा जो वस्तुतः अन्य सभी ऊर्जाओं को फलीभूत कर सकती है—एक महत्वपूर्ण ऊर्जा जिसकी अब तक हम लोगों ने उपेक्षा की है—वह है चरित्र-ऊर्जा, जो वेदांत के अनुसार आध्यात्मिकता की ऊर्जा है।

चरित्र में दो महान स्रोत निहित रहते हैं। एक है सबल इच्छा से युक्त स्पष्ट बुद्धि, दूसरा है उस इच्छा की मानवजाति की ओर उन्मुखता। वही समस्त चरित्र-ऊर्जा का निर्माण करती है। चरित्र मानवोन्मुखी इच्छा में केन्द्रित रहता है। जब तुम रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य का अध्ययन करते हो, और जब तुम स्वयं को वह शिक्षा प्रदान करते हो जो इस प्रकार के व्यक्तित्व के ढाँचे का गठन करती है, तब तुम अपने भीतर रचनात्मक एवं धनात्मक ऊर्जा का विशाल भंडार विकसित करते हो; और जब तुम इसके साथ इस ज्ञान का कि भारत क्या है, भारत क्या था और भारत क्या होगा, संयोग करते हो, तब तुम एक अविचल व्यक्ति से गतिशील व्यक्ति में, अपने देश के मानव-विकास के लिए होने वाले महायुद्ध के सुयोग्य सैनिक में रूपान्तरित हो जाते हो। इस प्रकार ही तुम भारत का पुनर्निर्माण कर सकते हो। स्वामी विवेकानन्द का शब्द है पुनः - निर्माण। हमारे पुरखों ने इसका निर्माण किया है; किन्तु इसके कुछ हिस्से टूट गये

हैं; कुछ हिस्से नष्ट हो गये हैं और आज अनुपयोगी हो गये हैं। हमें इन सबको काट कर हटा देना है, और आधुनिक युग के ज्ञान तथा आवश्यकताओं के अनुरूप इस भवन में नये आयामों को जोड़ देना है। इसी प्रकार की शिक्षा की अपने देश में प्रयोजनीयता हैं। इस पुनर्निर्माण के लिए प्रचुर ज्ञान, प्रचुर शक्ति, और प्रचुर चिन्तन की जरूरत है। रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य ऐसे ज्ञान, ऐसी प्रेरणा, और ऐसी कर्म-शक्ति का भांडार-गृह है।

५. 'तुम्हारे देश को परमवीर चाहिए; परमवीर बनो !'

यह रामकृष्ण-विवेकानन्द युवा-सम्मेलन अपनी महान् राजधानी के युवजनों को मानव विकास और परिपूर्णता के लिए ऐसे ही महायुद्ध छेड़ने के लिए प्रवृत्त करने के हेतु आयोजित किया गया है। तुम लोग इस पूरे नगर में बिखरे पड़े हो। जब तुम लोगों में से कुछ इस सम्मेलन में उपस्थित हो, तो तुम केवल अपना हो नहीं, बल्कि उन तमाम अन्य युवकों का भी प्रतिनिधित्व कर रहे हो जो इस सम्मेलन में नहीं आ सके। तुम इस सम्मेलन से प्रेरणा लो और जाओ और अपने क्षेत्रों के दूसरे युवजनों के साथ इसके सहयोगी बनो। इस प्रकार, अपनी राजधानी के नगर से शुरू कर, एक राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मानवतावादी दिशा के साथ युवा शक्ति की एक नयी रचनात्मक तरंग के उत्पादन में हमलोग सहायता कर रहे हैं। यह हमलोगों तथा शेष संसार के लिए एक बड़ा लाभ होगा, क्योंकि तुमलोगों की तरह युवजन सदा दिल्ली में नहीं रहेंगे; तुम लोग भारत के विभिन्न हिस्सों में या संसार के अन्य हिस्सों में जा सकते हो। और जब तुम कहीं भी जाओ, तुम अपने साथ कुछ अत्यन्त मूल्यवान—यह ज्ञान, यह समर्पण, यह दृढ़ संकल्प—लेते जाओ। तुम जिस किसी पेशे में प्रवेश करो—चाहे वह पत्रकारिता हो, वैज्ञानिक अनुसंधान हो, होटल-प्रबन्धन हो, प्रशासन हो, राजनीति हो—जहाँ कहीं तुम प्रवेश करो, अपने साथ तुम कुछ मूल्यवान और उत्प्रेरक, कुछ जिन्हें हम अपने देश में अभी बिलकुल खो चुके हैं, जैसे अपने आप में श्रद्धा और अपने राष्ट्र के प्रति श्रद्धा, चरित्र-ऊर्जा तथा भारत का यथार्थ ज्ञान और इसका कैसे पुनर्निर्माण करें—लेते जाओ। यह मौन भाव से भारत के पुनर्निर्माण की सर्वोत्तम तैयारी होगी। यह एक विशाल कार्य है; इसे करने के लिए पर्याप्त साहस, पर्याप्त आंतरिक स्रोतों की हमें आवश्यकता है। प्रतिदिन हमलोग भारत में अपने ईर्द-गिर्द की समस्याओं और संकटों और निराशाजनक स्थितियों तथा उन तमाम चीजों के बारे में, जो हमारे और हमारे देश के लिए दोषपूर्ण हैं, भाषणों में सुनते और लेखों में पढ़ते हैं। यह हमें और भी दुर्बल बना रहा है। यथार्थ प्रवृत्ति के अभाव के कारण राष्ट्रीय समस्याएँ प्रतिदिन कई गुणा बढ़ती जा रही हैं और हमारे देश को आकुलित कर रही हैं। हमें चरित्र के विकास, जन-भावना, नागरिक-चेतना और कठिन श्रम करने की जरूरत है।

याद रखो, प्रत्येक देश को अपनी रक्षा स्वयं करनी होगी। बाहर से कोई व्यक्ति इस देश को बचाने नहीं जा रहा है। हमें स्वयं इसे बचाना है। अपने बच्चों को हमलोग वह महान् संदेश बता सकते हैं जिसे श्रीकृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में दिया है। 'अपने पाँवों पर खड़े होओ और मनुष्य बनो'—वर्तमान समय में स्वामी विवेकानन्द ने गीता (६.५) के प्राचीन सन्देश को प्रतिध्वनित करते हुए कहा है :

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥

'अपने द्वारा अपना उद्धार करो। स्वयं को अधोगति में नहीं पहुँचाओ। क्योंकि तुम स्वयं अपना मित्र हो और तुम स्वयं अपना शत्रु हो।'

आज के हमारे देश की विषाक्त अवस्थाओं के लिए यह कौन-सी औषधि प्रदान करता है! स्वाधीन होने के बाद हम कई राष्ट्रीय क्षेत्रों में स्वयं अपना शत्रु बने हैं; अब हमें अपना मित्र स्वयं होना सीखना है।

भारत में मानव-विकास के कार्यों को हमें निश्चयपूर्वक तेज करना होगा। इसे हमें स्वयं करना है; यह हमारा अपना दायित्व है; अपना विशेषाधिकार है। किस

प्रकार हम अपना मित्र होंगे और राष्ट्र की आशाओं को पूर्ण कर सकेंगे ?

दूसरा श्लोक इस महान् विचार को स्पष्टता-पूर्वक समझाता है।

बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत् ॥

'जब तुम अपने भीतर के मन और इन्द्रियों सहित शरीर की प्रबल ऊर्जा को संयमित कर लेते हो (और उन्हें मानवोन्मुखी बना देते हो) तब तुम स्वयं अपना मित्र हो जाते हो। और जब तुम ऐसा नहीं करते तब तुम स्वयं अपना शत्रु हो जाते हो (और लोगों के भी शत्रु हो जाते हो)।'

यही संदेश है जिसे इस महान् आचार्य ने हमें सदा के लिए प्रदान किया। हमने उस संदेश पर ध्यान नहीं दिया। हमारे पास यौवन-उर्जा है; किन्तु इसे कैसे संयमित किया जाय, इस अपरिपक्व मानव-ऊर्जा को किस प्रकार चरित्र-ऊर्जा में विकसित किया जाय, यह हम नहीं जानते हैं। आज हमें इसे सीखना है। यही शिक्षा हम लोग आज रामकृष्ण-विवेकानन्द साहित्य से ग्रहण कर सकते हैं। इस साहित्य में निर्बन्ध मानवतावादी प्रवृत्ति का जो उद्दाम संदेश तुम पाते हो, वह संदेश तुम केवल उपनिषदों, गीता, बुद्ध के महत् संदेश, तथा महान् श्रीमद्भागवत में पाते हो। हमें इस संदेश को पचाने की जरूरत है, ताकि स्कूलों और कॉलेजों में जो खंडित ज्ञान और सूचनाएँ हम पाते हैं, इनके बावजूद, युवजन एक नयी शिक्षा प्राप्त करें। यह शिक्षा समस्त ज्ञान को उच्च चरित्र और व्यावहारिक दक्षता में ढाल देगी। यह सम्मेलन तुम्हारी यौवनपूर्ण ऊर्जा को उस ओर उन्मुख करने में सहायता देने का अवसर प्रदान करता है। स्वाधीनता के पूर्व, एक प्रबल देशभक्तिपूर्ण समर्पण की प्रेरणा से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए संघर्ष करने और अंततः उस पाने के लिए भी अपने देश की युवा-शक्ति का हमने उपयोग किया। हमारे हजारों युवकों ने स्वाधीनता-पूर्व काल में यह किया है। हमारे लाखों युवाओं को उस परमवीर भाव को ग्रहण करना है और स्वाधीनता के बाद के काल में भी वैसा ही कार्य करना है ताकि भारत के करोड़ों-करोड़ पीड़ित तथा अविकसित मनुष्यों के लिए यह राजनीतिक स्वाधीनता अर्थ-पूर्ण हो सके। 'तुम्हारे देश को परमवीरों की आवश्यकता है, परमवीर बनो !'—स्वामी विवेकानन्द सत्परामर्श देते हैं। प्रत्येक युवक और युवती को इसे अपने ऊपर महान् राष्ट्रीय एवं मानवीय उत्तरदायित्व के रूप में स्वीकार करना ही चाहिए। जब उत्तरदायित्व का यह भाव आयेगा, तब अपनी प्राचीन मातृभूमि के पुनर्निर्माण के लिए अपनी ऊर्जा को दिशा प्रदान करने के निमित्त युवक और युवती श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन एवं उपदेशों में सर्वोत्तम सहायता और मार्ग-दर्शन पायेंगे। ये उपदेश अपनी सीमा में विश्वजनीन, पवित्र, और गहन व्यावहारिक तात्पर्यों से भरे हुए हैं।

६. व्यावहारिक वेदान्त

जब कभी हमलोग धर्म के विषय में बोलते हैं तब हमलोग सामान्यतः केवल कुछ अंधविश्वासों, कुछ सुधार-विरोधी विचारों, और प्रायः मानव-विरोधी आचारों, जैसे अस्पृश्यता तथा जातीयता को ही ध्यान में रखते हैं। इसके विपरीत, जब तुम रामकृष्ण और विवेकानन्द को पढ़ोगे, तब तुम इतने महत्तम विषय के प्रति इस प्रकार की धारणाओं से पूर्णतः सहमति पूर्वक भ्रम-रहित हो जाओगे। तुम समझ जाओगे कि वह धर्म नहीं है। सम्पूर्ण मानव-विकास और सब में निहित ब्रह्म-स्फुलिंग के उद्घाटन के गहन संदेश को यथार्थ धर्म कहते हैं। हमलोगों के वेदान्त के द्वारा विकसित धर्म के विज्ञान के अनुसार धर्म का सारतत्व आध्यात्मिकता है। इस तरह श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के जीवन तथा उपदेशों के तात्पर्य का अध्ययन एवं समाहार कर हमलोग आध्यात्मिक उन्नयन के द्वारा प्रचंड शक्ति प्राप्त कर सकते हैं।

मैं एक तृतीय व्यक्तित्व—श्रीमाँ सारदा देवी, जिनका चित्र भी तुम मंच पर सुसज्जित देखते हो—की भी चर्चा करना चाहता हूँ। वे एक असाधारण व्यक्तित्व

थीं—सरल एवं आडम्बरहीन, शक्ति और सौम्यता से समन्वित। शुद्ध प्रेम से परिपूर्ण उनका मातृ-हृदय था जिसने मनुष्यों में, हिन्दू, मुसलमान या ईसाई में, भारतीय या विदेशी में, किसी प्रकार का भेद नहीं किया।

आज हमारे नागरिकों में से प्रत्येक के पीछे इन तीन व्यक्तियों से प्रेरणा का पुंज अग्रसर हो रहा है। अपने यौवन-काल में ही हमें ऐसी प्रेरणा से अपने को भरने के लिए अपना हृदय खोल देना चाहिए। तब हमारे आगे इन विचारों के समाहार एवं उनका व्यावहारिक रूप में कार्यान्वियन के लिए समय है। वेदान्त के महान् दर्शन को अवश्य व्यावहारिक बनाना चाहिए। तुममें से प्रत्येक के सम्मुख पचास या इससे अधिक वर्ष पड़े हुए हैं। इस प्रेरणा से अपना हृदय भर लेने के बाद तुम कितने ही महान् कार्य इस अवधि में कर सकते हो! इस साहित्य का पूरा अध्ययन कर लेना ही सर्वोत्तम शिक्षा और पुनर्शिक्षा है जिसकी हमारे देश को आवश्यकता है और जिसे हमारा देश आज प्राप्त कर सकता है। 'भारतीय जीवन में वेदान्त का प्रभाव' (विवेकानन्द साहित्य, पंचम खण्ड, पृ० १४२) विषय पर अपने व्याख्यान में विवेकानन्द जो कहते हैं उसे सुनो :

'संसार में ज्ञान के प्रकाश का विस्तार करो; प्रकाश, सिर्फ प्रकाश लाओ। प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान के प्रकाश को प्राप्त करे। जब तक लोग भगवान् के निकट न पहुँच जायँ, तब तक तुम्हारा कार्य शेष नहीं हुआ है। गरीबों में ज्ञान का विस्तार करो, धनियों पर और भी अधिक प्रकाश डालो; क्योंकि दरिद्रों की अपेक्षा धनियों को अधिक प्रकाश की आवश्यकता है। **अपढ़ लोगों को भी प्रकाश दिखाओ। शिक्षित मनुष्यों के लिए और अधिक प्रकाश चाहिए,** क्योंकि आजकल शिक्षा का मिथ्याभिमान खूब प्रबल हो रहा है।

उन्होंने इसके पहले कहा था (वही, पृ०१४१-४१) :

'वेदान्त के इन सब महान् तत्त्वों का प्रचार आवश्यक है, ये केवल अरण्य में अथवा गिरि-गुहाओं में आवद्ध नहीं रहेंगे; वकीलों और न्यायाधीशों में, प्रार्थना-मन्दिरों में, दरिद्रों की कुटियों में, मछुओं के घरों में, छात्रों के अध्ययन-स्थानों में—सर्वत्र ही इन तत्त्वों की चर्चा होगी और ये काम में लाये जायँगे। हर एक व्यक्ति, हर एक सन्तान चाहे जो काम करे, चाहे जिस अवस्था में हो—उनकी पुकार सबके लिए है। भय का अब कोई कारण नहीं है। उपनिषदों के सिद्धान्तों को मछुए आदि साधारणजन किस प्रकार काम में लायेंगे? इसका उपाय शास्त्रों में बताया गया है। मार्ग अनन्त है, कोई इसकी सीमा के बाहर नहीं जा सकता। तुम निष्कपट भाव से जो कुछ करते हो तुम्हारे लिए वही अच्छा है। अत्यन्त छोटा कर्म भी यदि अच्छे भाव से किया जाय, तो उससे अद्भुत फल की प्राप्ति होती है। अतएव, जो जहाँ तक अच्छे भाव से काम कर सके, करे। मछुआ यदि अपने को आत्मा समझकर चिन्तन करे, तो वह एक उत्तम मछुआ होगा। विद्यार्थी यदि अपने को आत्मा विचारे तो वह एक श्रेष्ठ विद्यार्थी होगा। वकील यदि अपने को आत्मा समझे, तो वह एक अच्छा वकील होगा। औरों के विषय में भी यही समझो।...... यदि मछुआ को तुम वेदान्त सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ; पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसी को कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हों। सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मतत्त्व सम्बन्धी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।

'उन्नति के लिए सबसे पहले स्वाधीनता की आवश्यकता है।'

७. अपने चरित्र में पूर्व और पश्चिम का ताल-मेल करना होगा।

स्वामीजी का साहित्य ऐसे विस्मयकारी विचारों से भरा पड़ा है। अपने एक पत्र में वे दो प्रकार के चरित्र बल की चर्चा करते हैं—एक, जिसे हमने अपनी राष्ट्रीय परम्परा से प्राप्त की है, और दो, जिसे आधुनिक-काल

में पश्चिम ने अपनी महत् उपलब्धियों के द्वारा प्रदर्शित किया है। इन दो उपलब्धियों के पीछे दो चरित्र-बल हैं। हमें अपने राष्ट्रीय चरित्र में इनका समन्वय करना है। ये क्या हैं ? शिकागो से १९८४ ई० में अपने 'मद्रास के शिष्यों के नाम' लिखित पत्र (पत्रावली : पृ० १०२-४) में स्वामी विवेकानन्द हमलोगों को निम्नलिखित उपदेश देते हैं :

'जाति-भेद रहेगा या जायगा, इस प्रश्न से मुझे कुछ मतलब नहीं है। मेरा विचार है कि भारत और भारत के बाहर मनुष्य-जाति में जिन उदार भावों का विकास हुआ है, उसकी शिक्षा गरीब से गरीब और हीन से हीन को दी जाय और फिर उन्हें स्वयं विचार करने का अवसर दिया जाय। जाति-भेद रहना चाहिए या नहीं, महिलाओं को पूर्ण स्वतन्त्रता मिलनी चाहिए या नहीं, मुझे इससे कोई वास्ता नहीं। "विचार और कार्य की स्वतन्त्रता ही जीवन उन्नति और कुशल-क्षेम का एकमेव साधन है।" जहाँ स्वतन्त्रता नहीं है, उस मनुष्य, उस जाति या राष्ट्र की अवनति निश्चय होगी।

जाति-भेद हो या न हो, लोकाचार हो या न हो, परन्तु जो मनुष्य या मनुष्य-श्रेणी, जाति, राष्ट्र या सम्प्रदाय किसी व्यक्ति के स्वतन्त्र विचार या कर्म में बाधा डालती है, वह राक्षसी है और उसका नाश अवश्य होगा। परन्तु स्मरण रहे कि वह स्वतन्त्रता किसी को हानि पहुँचानेवाली न होनी चाहिए।

'जीवन में मेरी सर्वोच्च अभिलाषा यह है कि एक ऐसा चक्र परिवर्तन कर दूँ, जो कि उच्च एवं श्रेष्ठ विचारों को सबके द्वार-द्वार पहुँचा दें। फिर स्त्री-पुरुषों को अपने भाग्य का निर्णय स्वयं करने दो। हमारे पूर्वजों ने तथा अन्य देशों ने जीवन के महत्वपूर्ण प्रश्नों पर क्या विचार किया है, यह सर्व-साधारण को जानने दो विशेषकर उन्हें यह देखने दो कि और लोग क्या कर रहे हैं। फिर उन्हें अपना निर्णय करने दो। रासायनिक द्रव्य इकट्ठे कर दो और प्रकृति के नियमानुसार वे किसी विशेष आकार को धारण कर लेंगे।

'परिश्रम करो, अटल रहो और भगवान पर श्रद्धा रखो। काम शुरू कर दो। मैं भी शीघ्र ही आ जाऊँगा। "धर्म को बिना हानि पहुँचाये जनता की उन्नति"—इसे अपना आदर्श वाक्य बना लो।

'याद रखो कि राष्ट्र झोपड़ी में बसा हुआ है; परन्तु खेद है, उन लोगों के लिए कभी किसी ने कुछ नहीं किया। हमारे आधुनिक सुधारक विधवाओं का विवाह करने में लगे हुए हैं। निश्चय ही मुझे प्रत्येक सुधार से सहानुभूति है, परन्तु राष्ट्र की भावी उन्नति विधवाओं को पति मिलने पर निर्भर नहीं वरन जनता की अवस्था पर निर्भर है। क्या तुम जनता की उन्नति कर सकते हो ? क्या उनका खोया हुआ व्यक्तित्व, बिना उनकी स्वाभाविक आध्यात्मिक-वृत्ति को नष्ट किये, तुम वापस कर सकते हो ?

'क्या अभिन्नता, स्वतन्त्रता, कार्य-कौशल, पौरुष में तुम पश्चिमियों के भी गुरु बन सकते हो ? क्या उसी के साथ-साथ धर्म-विश्वास और स्वाभाविक धार्मिक वृत्ति में हिन्दुओं की परम मर्यादा पर जमे रह सकते हो ? यह हमारा काम है और **हम इसे करेंगे ही**। तुम सबने **इसी के लिए जन्म लिया है**। अपने में विश्वास रखो। दृढ़ विश्वास से बड़े-बड़े कर्मों की उत्पत्ति होती है। हमेशा आगे बढ़ो। मरते दम तक गरीब और पद-दलितों के लिए सहानुभूति रखना—यही हमारा आदर्श वाक्य है। वीर युवको ! आगे बढ़ो।

शुभाकांक्षी,
विवेकानन्द'

जीवन का एक गंभीर आध्यात्मिक अर्थ है। इसका एक आध्यात्मिक आयाम है। यह मात्र जगत नहीं है जिसे तुम पंचेन्द्रियों से देखते हो। इसमें कुछ इसके अतिरिक्त है—जो ऐन्द्रिक आयाम से परे है। वेदान्त और बौद्धमत वास्तविकता के इन दो आयामों को **लोक और लोकोत्तर** कहते हैं। लोक वह है जिसका अनुभव तुम पंचेन्द्रियों से करते हो। अर्थात् लोक वह है जिसका

संचालन तुम भौतिक विज्ञानों, राजनीति, अर्थशास्त्र और अन्य सामाजिक-विज्ञानों द्वारा करते हो। वास्तविकता के इस आयाम के संचालन के द्वारा भौतिक समृद्धि आती है। किन्तु, नैतिक, सौन्दर्यमूलक, तथा समस्त उच्चतर आध्यात्मिक मूल्य एवं मानवीय विकास तथा परिपूर्णता लोकोत्तर या असीम आत्मा, हम सब में प्रच्छन्न ब्रह्माग्नि की चिनगारी के द्वारा आते हैं।जीवन की—वैयक्तिक और सामूहिक—परिपूर्णता की प्राप्ति के लिए, हमलोगों को एक शक्ति का दूसरी शक्ति से ताल-मेल करना होगा। हमलोगों का देश लगातार प्राचीन वैदिककाल के परम प्रज्ञावान ऋषियों से लेकर श्रीराम-कृष्ण के आधुनिक युग तक यथार्थता के **लोकोत्तर** आयाम में दीक्षित होता रहा है। हमें इसे दृढ़ता से पकड़े रहना है और तब आधुनिक पश्चिमी लोगों के द्वारा यथार्थता के **लोक** आयाम के कुशल संचालन से अद्भुत शुद्ध गुणों और वरदानों, जिन्हें स्वामीजी **समता स्वाधीनता, शक्ति और कर्म के भाव के** के रूप में उल्लेख करते हैं, को अपनाने के लिएअपनी बाँहें फैलानी होंगी। विवेकानन्द कहते हैं कि इन दोनों की सम्मिलित शक्ति से हमलोग भारत का भारतीय पद्धति से पुनर्निर्माण कर सकते हैं। हमलोग अतीत की अपेक्षा अपने भविष्य को अधिक ज्योतिर्मय बनायेंगे।

८. विवेकानन्द और हमारे युवजन :

अपने देश के युवकों को यही चुनौती उन्होंने दी है। अपने गुरुदेव श्रीरामकृष्ण की भाँति उन्हें भी अपने युवजनों में प्रचण्ड विश्वास था। उनके मद्रास, कलकत्ता और लाहौर के व्याख्यानों में तुम इसे लक्ष्य करोगे। भारत के पुर्नर्निर्माण के लिए अपनी योजना के विषय में, १८९७ ई० में मद्रास में अपना व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने कहा था (विवेकानन्द साहित्य : पंचम खण्ड पृ० १९६-९७) :

'यही मेरी योजना है। तुमको यह बड़ी भारी मालूम होगी, पर इसकी इस समय बहुत आवश्यकता है। तुम पूछ सकते हो, इस काम के लिए धन कहाँ से आयेगा? धन की जरूरत नहीं। धन कुछ नहीं है। पिछले बारह वर्षों से मैं ऐसा जीवन व्यतीत कर रहा हूँ कि मैं यह नहीं जानता कि आज यहाँ खा रहा हूँ तो कल कहाँ खाऊँगा। और न मैंने कभी इसकी परवाह ही की। धन या किसी भी वस्तु की जब मुझे इच्छा होगी, तभी वह प्राप्त हो जायगा, क्योंकि वे सब मेरे गुलाम हैं, न कि मैं उनका गुलाम है। जो मेरा गुलाम है, उसे मेरी इच्छा होते ही मेरे पास आना पड़ेगा। अत: उसकी कोई चिन्ता न करो।

'अब प्रश्न है कि काम करने वाले लोग कहाँ हैं? मद्रास के नवयुवकों, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोगे? यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो मैं कहूँगा कि तुममें से प्रत्येक का भविष्य उज्जवल है। अपने आप पर अगाध, अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास, जैसा मैं बाल्यकाल में अपने ऊपर रखता था और जिसे मैं अब कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुममें से प्रत्येक अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अन्नत शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरूज्जीवित कर सकोगे। फिर तो हम दुनिया के सभी देशों में खुलेआम जायँगे और आगामी दस वर्षों में हमारे भाव उन सब विभिन्न शक्तियों के एक अंशरूप हो जायँगे, जिनके द्वारा संसार का प्रत्येक राष्ट्र संगठित हो रहा है। हमें भारत में बसने वाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेघावाले और उत्साह युक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।" तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में ही काम करो, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और

बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं। और वे उसे ही ग्रहण करते हैं।' और कुछ दिनों के बाद कलकत्ते में अपने स्वागत का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा (वही : पृष्ठ २१२)

"कलकत्ता निवासी युवको। उठो जागो, शुभ मुहूर्त आ गया है। सब चीजें अपने आप तुम्हारे सामने खुलती जा रही हैं। हिम्मत करो और डरो मत। केवल हमारे ही शास्त्रों में ईश्वर के लिए 'अभी:' विशेषण का प्रयोग किया गया है। हमें 'अभी:' होना होगा, तभी हम अपने काय में सिद्धि प्राप्त करेंगे। उठो, जागो, तुम्हारी मातृभूमि को इस महावलि की आवश्यकता है। इस कार्य की सिद्धि युवकों से ही हो सकेगी। 'युवा, आशिष्ठ, द्रढ़िष्ठ, बलिष्ठ, मेधावी', उन्हीं के लिए यह कार्य है। और ऐसे सैंकड़ों हजारों युवक कलकत्ते में हैं। जैसा कि तुम लोग कहते हो,—यदि मैंने कुछ किया है, तो याद रखना, मैं ही एक नगण्य वालक हूँ जो किसी समय कलकत्ते की सड़कों पर खेला करता था। अगर मैंने इतना किया तो इससे कितना अधिक तुम कर सकोगे ! उठो—जागो, संसार तुम्हे पुकार रहा है…… इसलिए, कलकत्ते के युवको, अपने रक्त में उत्साह भर कर जागो। मत सोचो कि तुम गरीब हो, मत सोचो कि तुम्हारे मित्र नहीं हैं। अरे, क्या कभी तुमने देखा है कि रुपया मनुष्य का निर्माण करता है। यह सम्पूर्ण संसार मनुष्य की शक्ति से, उत्साह की शक्ति से, विश्वास की शक्ति से निर्मित हुआ है।"

और 'वेदान्त' विषय पर १२ नवम्बर, १८९७ ई० को लौहौर की एक विशाल जन-सभा को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी ने इन अग्निमय शब्दों में पंजाब के युवकों को प्रबोधित किया (वही : पृ० ३१९-२१) :—

अतः लाहौर के युवको, निश्चयपूर्वक समझो इस आनुवंशिक तथा राष्ट्रीय महापाप के लिए हमीं लोग उत्तरदायी हैं। बिना इसे दूर किये हमारे लिए कोई दूसरा उपाय नहीं है। तुम चाहे हजारों समितियाँ गढ़ लो, चाहे बीस हजार राजनीतिक सम्मेलन करो, चाहे पचास हजार संस्थाएँ स्थापित करो, इसका कोई फल न होगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह सहानुभूति, वह प्रेम न आयेगा, जब तक तुम्हारे भीतर वह हृदय न आयेगा, जो सबके लिए सोचता है। जब तक फिर से भारत को बुद्ध का हृदय प्राप्त नहीं होता और भगवान् कृष्ण की वाणी व्यावहारिकजीवन में परिणत नहीं की जाती, तबतक हमारे लिए कोई आशा नहीं। तुम लोग यूरोपियनों और उनकी सभा-समितियों का अनुकरण कर रहे हो, परन्तु उनके हृदय के भावों का तुमने क्या अनुकरण किया है ?……

"अतः, हे लाहौर के युवको, फिर अद्वैत की वही प्रबल पताका फहराओ, क्योंकि और किसी आधार पर तुम्हारे भीतर वैसा अपूर्व प्रेम नहीं पैदा हो सकता। जब तक तुम लोग उसी एक भगवान् को सर्वत्र एक ही भाव से अवस्थित नहीं देखते, तब तक तुम्हारे भीतर वह प्रेम पैदा नहीं हो सकता—उसी प्रेम की पताका फहराओ। उठो, जागो, जब तक लक्ष्य पर नहीं पहुँचते तब तक मत रुको। उठो, एक बार और उठो, क्योंकि त्याग के बिना कुछ हो नहीं सकता। दूसरे की यदि सहायता करना चाहते हो, तो तुम्हें अपने अहंभाव को छोड़ना होगा……तुम सब कुछ दूर फेंको—यहाँ तक कि अपनी मुक्ति का विचार भी दूर रखो—जाओ, दूसरों की सहायता करो। तुम सदा बड़ी-बड़ी साहसिक बातें करते हो, परन्तु अब तुम्हारे सामने यह व्यावहारिक वेदान्त रखा गया है। तुम अपने इस तुच्छ जीवन की बलि देने के लिए तैयार हो जाओ।

"यदि यह जाति बची रहे तो तुम्हारे और हमारे जैसे हजारों आदमियों के भूखों मरने से भी क्या हानि होगी ? यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे सिर पर है, सदा ही अजस्त्र जलधारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हें नाबदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भाण्डार रहते हुए भी जिन्हें हमने भूखों मार डाला, जिन्हें हमने अद्वैतवाद

का तत्त्व सुनाया और जिनसे हमने अतीव घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे जबानी तो यह कहा कि सब बराबर हैं, सब वही एक ब्रह्म हैं, परन्तु इस उक्ति को काम में लाने का तिल मात्र भी प्रयत्न नहीं किया। 'मन में रखने ही से काम हो जायगा, परन्तु व्यावहारिक संसार में अद्वैतवाद को घसीटना?—हरे! हरे!!' **अपने चरित्र का यह दाग मिटा दो**। 'उठो, जागो।' यदि यह क्षुद्र जीवन चला भी जाय तो क्या हानि है? सभी मरेंगे—साधु या असाधु, धनी या दरिद्र—सभी मरेंगे। चिरकाल तक किसी का शरीर नहीं रहेगा। अतएव उठो, जागो और सम्पूर्ण रूप से निष्कपट हो जाओ। भारत में घोर कपट समा गया है—चाहिए चरित्र, चाहिए इस तरह की दृढ़ता और चरित्र का बल जिससे मनुष्य आजीवन दृढ़व्रत बन सके।

९. श्रीरामकृष्ण और हमारे युवजन :

"श्रीरामकृष्ण ने हृदय से युवकों को प्यार किया। वह प्रेम मनुष्य और उसकी दैवी सम्भवनाओं की गंभीर वेदान्ती दृष्टि पर आधारित था। उन्होंने इस गहन दृष्टि की चर्चा अपने समीप आने वाले भक्तों से बातचीत के क्रम में की है, जिसे उनके एक गृही भक्त, स्कूल-शिक्षक महेन्द्रनाथ गुप्त—ने, जो अपनी पहचान गुप्त रखने के लिए अपने को 'म' कहते थे—संकलित एवं ग्रंथाकार प्रकाशित किया है। यह ग्रंथ है, विश्व विख्यात 'श्रीरामकृष्ण वचनामृत'।

श्रीरामकृष्ण –हाजरा मुझे उपदेश देता है कि तुम इन लड़कों के लिए इतनी चिन्ता क्यों करते हो! गाड़ी में बैठकर बलराम के मकान पर जा रहा था, उसी समय मन में बड़ी चिन्ता हुई। कहने लगा, 'माँ, हाजरा कहता है, नरेन्द्र आदि बालकों के लिए मैं इतनी चिन्ता क्यों करता हूँ; वह कहता है, ईश्वर की चिन्ता त्यागकर इन लड़कों की चिन्ता आप क्यों करते हैं?' मेरे यह कहते-कहते अचानक माँ ने दिखलाया कि वे ही मनुष्य रूप में लीला करती हैं। शुद्ध आधार में उनका प्रकाश स्पष्ट होता है। इस दर्शन के बाद जब समाधि कुछ टूटी तो हाजरा के ऊपर बड़ा क्रोध हुआ। कहा, साले मेरा मन खराब कर दिया था। फिर सोचा, उस बेचारे का अपराध ही क्या है; वह यह कैसे जान सकता है?

"मैं इन लोगों को साक्षात् नारायण जानता हूँ। नरेन्द्र के साथ पहले भेंट हुई। देखा, देहबुद्धि नहीं है। जरा छाती को स्पर्श करते ही उसका बाह्य-ज्ञान लोप हो गया। होश आने पर कहने लगा, 'आपने यह क्या किया! मेरे तो माता-पिता हैं।' यदु मल्लिक के मकान में भी ऐसा ही हुआ था। क्रमशः उसे देखने के लिए व्याकुलता बढ़ने लगी, प्राण छटपटाने लगे। तब भोलानाथ से कहा, 'क्यों जी, मेरा मन ऐसा क्यों होता है?' भोलानाथ बोले, 'इस सम्बन्ध में महाभारत में लिखा है कि समाधिवान् पुरुष का मन जब नीचे उतरता है, तब सतोगुणी लोगों के साथ विलास करता है। सतोगुणी मनुष्य देखने से उसका मन शान्त होता है।'—यह बात सुनकर मेरे चित्त को शान्ति मिली। बीच-बीच में नरेन्द्र को देखने के लिए मैं बैठा-बैठा रोया करता था।"[1]

"इन लड़कों में कामनी और कांचन का प्रवेश अभी तक नहीं हो पाया। इसीलिए तो उन्हें मैं इतना प्यार करता हूँ। हाजरा कहता है, 'धनी लोगों के सुन्दर लड़के देखकर तुम उन्हें प्यार करते हो।' अगर यही बात है तो हरीश, लाटू, नरेन्द्र इन्हें मैं क्यों प्यार करता हूँ? नरेन्द्र को तो रोटी खाने के लिए नमक खरीदने के लिए भी पैसे नहीं मिलते।

"इन लड़कों में विषय-बुद्धि अभी नहीं पैठी। इसीलिए उनका मन इतना शुद्ध है।

---

१. श्रीरामकृष्ण वचनामृत: प्रथम भाग: १९८०, पृ० ३२३-२४।

"और बहुतेरे उनमें नित्य सिद्ध भी हैं। जन्म से ही ईश्वर की ओर मन लगा हुआ है। जैसे तुमने एक बगीचा खरीदा। साफ करते हुए कहीं जल का स्रोत तुम्हें मिल गया। मिट्टी हटी नहीं कि कलकल स्वर से पानी निकलने लगा।'[1]

बलराम--महाराज, संसार मिथ्या है, यह ज्ञान पूर्ण को एकदम कैसे हो गया ?

श्रीरामकृष्ण---जन्मान्तरीण। पिछले जन्मों में सब किया हुआ है। शरीर ही छोटा और वृद्ध होता रहता है, पर आत्मा के लिए वह बात नहीं।

'वे कैसे हैं, जानते हो ?—जैसे पहले फल लगकर फिर फूल हों। पहले दर्शन, फिर गुण-महिमा आदि का श्रवण, फिर मिलन।

"निरंजन को देखो—न लेना है, न देना।—जब पुकार होगी तभी चला जा सकता है। परन्तु जब तक मनुष्य की माँ जीवित है, तब तक उसे उसका भरण-पोषण करना चाहिए। मैं अपनी माँ की फूल-चन्दन से पूजा करता था। वह जगन्माता ही हैं जो हमारे लिए सांसारिक माता के रूप में विराजमान हैं।"[2]

१०. मानव-इतिहास के आधुनिक काल का अद्भुत अन्वेषण :

इतिहास का यह एक भयंकर काल है जिसमें हम लोग रह रहे हैं। मानवता जो कुछ सर्वोत्तम दे सकती है उसका हमें समाहार करना है। वह एक नयी चरित्र-ऊर्जा का सृजन करेगा, मात्र जिसके द्वारा हमलोग अपने देश के सुदीर्घ एवं गौरवोज्वल इतिहास का एक अधिक गौरवोज्वल अध्याय लिख सकते हैं।

पश्चिमी जगत हमें जो दे सकता है उसके सर्वोत्तम का समाहार करो न कि उसका जो उसकी संस्कृति में तुच्छ और साधारण है। जो उसमें सस्ता या तुच्छ है वह उनके लिए भी बुरा है और वे उससे पिंड छुड़ाने को उत्कंठित हैं। इसलिए पश्चिम से हमें वह नहीं लेना चाहिए जो तुच्छ और भड़कीला है। मैं इसे पश्चिमी संस्कृति का 'कोका कोला पक्ष' कहता हूँ। दुर्भाग्यवश, हममें से कुछ लोग उसी की खोज करते हैं। लेकिन हमें उनकी वैज्ञानिक प्रकृति, उनकी व्यावहार-कुशलता, उनकी मानवीयता, उनका जिज्ञासा-भाव, और उनकी ऊर्जा का अपने में समाहार करना है, तथा इसके साथ हमलोगों को जीवन के प्रति अपने आध्यात्मिक भाव के परम्परागत गुणों और लालित्यों का समन्वय करना है। इस दोनों का समन्वय करो और तुम्हारे भीतर प्रचण्ड चरित्र-ऊर्जा का विकास हो जायगा, जो विश्व-इतिहास में अपूर्व होगा। सारा विश्व आज इसकी तलाश कर रहा है। आधुनिक पाश्चात्य जगत भी अपनी परंपरागत विरासत के साथ भारत एवं पूर्वी जगत् की परम्परागत आध्यात्मिक विरासत के समन्वय का संधान कर रहा है। आधुनिक काल के मानव-इतिहास का यह अद्भुत अन्वेषण है। पूर्व कथित टोयनबी की अभ्युक्ति पश्चिम के वर्तमान अनेक चिन्तकों में से केवल एक की अभ्युक्ति है। वे सभी भारत की प्राचीन आध्यात्मिक सम्पदा को समस्त मानवता की सम्पदा बनाना चाहते हैं। भारत का यही दायित्व है। हम इसका निर्वाह कैसे कर सकते हैं जबकि हमने अपने ही सर्वसाधारण मनुष्यों के शरीर और मन को स्वस्थ नहीं बनाया है ? अपनी विदेश नीति को सुदृढ़ बनाने के लिए हमें अपनी गृहनीति को सुदृढ़ बनाना ही होगा। संसार के अन्य हिस्सों को आनन्द-कारक और उनपर अपनी छाप छोड़ने की आशा करने के पहले हमारे देश को स्वयं ही सुदृढ़, अधिक एकता-पूर्ण, और आजकल पायी जाने वाली इन सभी निराशा-जनक आर्थिक और सामाजिक स्थितियों से मुक्त होना ही होगा। आधुनिक भारत के युवजनों के सामने यही एक महान् विशेषाधिकार और सुअवसर है।

और यह रामकृष्ण विवेकानन्द युवा सम्मेलन अपने पाँच हजार वर्षों के इतिहास पर पड़ी इसी विस्मयकारी

२. वही : तृतीय भाग : १९५२, पृ० २१७-१८।

नयी चुनौती की ओर तुम्हारा ध्यान आकृष्ट करने के उद्देश्य से आयोजित हुआ है। आधुनिक काल उस इतिहास का अत्यन्त चुनौती भरा अध्याय है। हमें इस का अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए। विगत पाँच सौ वर्षों से हमलोगों ने इतिहास नहीं बनाया। हम निद्रा-भिमुख हो गये और इतिहास की 'सृष्टि', तथा इतिहास के 'शिकार' हो गये। हमने आधुनिक युग में इतिहास का निर्माण करना तब शुरू किया जब उन्नीसवीं शताब्दी में भारत ने स्वयं को जाग्रत किया, जिसकी व्यापक रचनात्मक शक्ति ने स्वामी विवेकानन्द को महान् देश अमेरिका में भेजा और जिसने उस अति विकसित देश के लोगों के मन में एक गंभीर प्रभाव उत्पन्न किया। आधुनिक भारतीय इतिहास के निर्माण-काल का यह मंगलाचरण है। हमलोग अभी उसी काल में रह रहे हैं। अपने जीवन में हमलोग उस सृजनात्मकता का थोड़ा अंश भी ग्रहण करें। हम केवल इतिहास का अध्ययन ही नहीं करें, वल्कि इतिहास का निर्माण भी करें। सम्प्रति यही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। एक महान् वैज्ञानिक, एक महान् मानवतावादी, एक महान् राजनीतिज्ञ, एक महान् प्रशासक, एक मौलिक चिंतक, एक महान् नागरिक और एक महान् धार्मिक मनीषी बनकर इस इतिहास का निर्माण करो। ऐसे हजारों रास्ते हैं जिनके द्वारा अपने इतिहास का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इसे करने के ये मात्र कुछ रास्ते हैं। भारत के पुनर्निर्माण का कार्य इसी प्रकार से शुरू किया जा सकता है। युव-जन पहले सृजनात्मक बनें, और अपने मन और जीवन से शताब्दियों से चली आ रही राष्ट्रीय जड़ता को हटा दें, तथा इस सत्य को गहराई से ग्रहण करें कि उनके राष्ट्रीय इतिहास के इस आधुनिक काल में मानव-विकास—वैयक्तिक और सामूहिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय—की महान् संभावनाएँ हैं। तब वे इतिहास की सृष्टि बने रहने की अपेक्षा इतिहास-निर्माता, इतिहास-स्रष्टा की गहन भूमिका का निर्वाह करने के लिए स्वयं को नियोजित करें।

११. निष्कर्ष :

तुमलोग आज इसी गौरवमय परिस्थिति में नियोजित किये गये हो। समग्र भारत के युवजनों का यही विशेषाधिकार और दायित्व है। भारत के इस राजधानी-नगर को भारत के शेष हिस्सों के लिए एक आदर्शपूर्ण होना ही चाहिए। अभी यह नहीं है। भारत के अन्य हिस्सों की अपेक्षा इस दिल्ली में अधिक अपराध, अधिक मदिरा सेवन, और अधिक नशीले द्रव्यों का सेवन होता है। सम्प्रति यह आदर्श नगर नहीं है, किन्तु इसे अपने देश का आदर्श नगर बनाना चाहिए।

हमारे इस राजधानी-नगर को स्वस्थ रक्त को उत्पन्न और सुदूरतम क्षेत्रों में बसे सर्व-साधारण-जनों में इसका संचार करने के योग्य होना ही चाहिए। इस राजधानी के युवजनों को अपने ऊपर यह दायित्व अवश्य ही लेना चाहिए। तब हम भारत के पुनर्निर्माण की क्रिया में आनेवाली उस तीव्रता का दर्शन कर सकेंगे जो स्वाधीनता-प्राप्ति के बाद अब तक कभी नहीं थी। इस विस्मयकारी शताब्दी के शेष वर्षों को इस रचनात्मक विज्ञान में अवश्य ही लगाना चाहिए। हम अभी जो कर रहे हैं वह निषेधात्मक विज्ञान है। देश की बुराइयों के प्रति चिल्लाना नहीं; वल्कि नीरवतापूर्वक उन्हें ढूँढ़ना और प्रभावशाली तरीके से उनकी चिकित्सा करना—यह रचनात्मक विज्ञान है। प्राचीन उपनिषदों के ऋषियों की उस मर्मवाणी से हमारे युवजन प्रेरणा ग्रहण करें जिसे आधुनिक युग के ऋषि स्वामी विवेकानन्द ने मुक्त रूप से प्रस्तुत किया है: "उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निवोधत" 'उठो, जागो और तब तक रुको नहीं, जब तक लक्ष्य प्राप्त न हो जाय।'

*

आधुनिक युवक : समस्याएँ और समाधान

—श्रीमत् स्वामी हर्षानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन, इलाहाबाद

[श्री रामकृष्ण मठ, मद्रास में आयोजित युवा सम्मेलन में २९ अगस्त, १९८२ ई० को श्रीमत् स्वामी हर्षानन्दजी द्वारा दिये गये अंग्रेजी व्याख्यान का रूपान्तर। रूपान्तरकार हैं : श्री रामेश्वर यादव, पटना। - सं०]

आज सारा संसार उत्तेजनापूर्ण स्थिति में है। चारों ओर समस्याएँ ही समस्याएँ हैं। राष्ट्र-राष्ट्रके बीच समस्याएँ हैं तो मानव-मानव के बीच भी। इन समस्याओं में एक है युवा-वर्ग की समस्या। जिसका कोई समुचित समाधान सम्पूर्ण विश्व में तथा अपने देश में भी अभी तक ढूँढ़ा नहीं जा सका है। चाहे समाज युवा-वर्ग के लिए समस्या हो या युवा-वर्ग ही समाज के लिए समस्या हो, या दोनों एक दूसरे के लिए समस्या हों, हर हालत में यह एक भयावह रूप धारण कर रही है और सामाजिक संतुलन को बिगाड़ रही है। हो सकता है, युवा-वर्ग छोटी-छोटी बातों के पीछे भाग रहे हों और बुजुर्ग लोग युवकों की समस्या को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण किये हों। कुल मिलाकर सभी इसका परिणाम भोग रहे हैं। यह परिणाम-भोग कोई साधारण नहीं, बल्कि गम्भीर मामला है।

नवयुवकों की समस्याएँ वर्तमान समय के लिए ही एक विशिष्ट अभिशाप स्वरूप हैं, ऐसी बात नहीं है। आज से करीब २३०० वर्ष पहले प्लेटो ने लिखा था "हमारे युवा लोगों के साथ क्या हो गया है ? वे बड़ों का अनादर करते हैं, सामाजिक नियमों का उल्लंघन करते हैं और पशु-भावना से ग्रसित होकर गलियों में लड़ते हैं। उनका नैतिक पतन हो रहा है। उनलोगों को क्या होने वाला है ?" क्या यह कथन आज के युवाओं के प्रति बड़े-बुजुर्गों के करुण-क्रंदन की प्रतिध्वनि नहीं है ? अतएव, युवकों की समस्या न तो कोई नयी समस्या है और न वर्तमान समय के लिए विशिष्ट अभिशाप। यह एक स्वाभाविक घटना मात्र है जो प्रत्येक समय में हुआ करती है। जब तक नवयुवक लोग रहेंगे यह समस्या भी रहेगी।

युवकों की समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने के पूर्व उनकी पहचान एवं वर्गीकरण कर लेना आवश्यक है। इससे भी पहले, युवा संबंधी सामान्य धारणा (Concept of youth) पर भी विचार करना होगा। सामान्यतः प्रत्येक व्यक्ति कभी-न-कभी युवावस्था में पदार्पण करता ही है। कल के युवा ही आज के वृद्ध हैं और आज के युवा ही कल के वृद्ध होंगे। यह जीवन की एक शाश्वत घटना है। दर्शन शास्त्र की भाषा में हम यों कह सकते हैं कि युवाकाल एक क्षणस्थायी घटना मात्र है जिससे होकर प्रायः सभी को गुजरना ही पड़ता है। चिर युवावस्था असंभव है और यदि संभव भी होता तो सिर्फ मानसिक क्लेशों का कारण बन जाता। चूँकि युवावस्था एक क्षणस्थायी घटना है, अतएव, समय ही अपने आप युवावस्था की समस्याओं का समाधान कर देगा तथा अलग से किसी विशेष समाधान की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए।

लेकिन यह समस्या इतनी आसान नहीं है। यद्यपि किसी खास व्यक्ति के जीवन में युवाकाल आता है और शीघ्र चला जाता है, किन्तु समाज में हर हमेशा युवकों की एक अच्छी खासी संख्या होती है जो समस्याओं को खड़ी करती है और स्वयं भी इसका फल भोगती है। इस सामूहिक युवावस्था के तथ्य (Collective phenomenon of youth) पर विचार करना ही होगा।

फिर एक विशिष्ट प्रकार की युवावस्था है और वह है मन की युवावस्था। शारीरिक रूप से वृद्ध या प्रौढ़ होने पर भी मानसिक रूप से जवान रहा जा सकता है। वृद्ध शरीर में भी कई लोग मानसिक रूप से युवा होते हैं और युवा शरीर में कई बूढ़ों जैसा आचरण करने वाले लोग होते हैं। किन्तु ऐसे लोग अपवाद स्वरूप होते हैं। ऐसे युवक मानवता के लिए समस्या बनने की बजाय वरदान स्वरूप होते हैं। यही लोग पुरानी और नयी पीढ़ी के अन्तराल में पुल बनाने का कार्य कर सकते हैं।

अब हम 'आधुनिक युवक' की चर्चा करें। किसी भी ऐतिहासिक युग के युवक उस युग के लिए 'आधुनिक' ही होते हैं। अगर ऐसी बात है तो वर्तमान युग के युवकों में कौन-सी विशेष 'आधुनिकता' है? आज भी कई युवक पुरानी पम्पराओं एवं संस्कारों में पले और बड़े हुए हैं और कई पुराने लोग भी अति आधुनिक हैं। वास्तव में, आधुनिकता का तात्पर्य ऐसे मन और प्रवृत्ति से है जो किसी व्यक्ति को प्राचीन मूल्यों को आँकने, वर्तमान को समझने एवं भविष्य की ओर झांकने के लिए सक्षम बनाता है। व्यर्थ पुरानपंथी विचार समूह (Fossilized thinkings) आधुनिक व्यक्ति के लिए अनजान ही होते हैं। इस दृष्टिकोण से देखने पर हम यह निश्चित रूप से कह सकते हैं कि मानवता के सभी महापुरुष आधुनिक थे।

लेकिन आज की इस दिशाहीन एवं अर्थहीन आधुनिकता का तात्पर्य आधुनिक पश्चिमी संस्कृति से है। साधारण युवक एवं 'आधुनिक युवक' में कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं! भौतिक रूप से, युवावस्था किसी के जीवन की सर्वोत्तम अवस्था है। यह स्वास्थ्य, शौर्य एवं तेज युक्त जीवनावस्था है। शक्ति और उत्साह से पूर्ण नवयुवक अपने अन्दर महान् साहस का अनुभव करता है। साहस की भावना से अनुप्राणित होकर वह दुःसाहसिक कार्यों में भी कूद पड़ता है। उच्च आकांक्षाएँ उसके पास स्वाभाविक रूप से रहती हैं जिनकी पूर्त्ति हेतु वह कठिन-से-कठिन परिश्रम कर सकता है। वह आवश्यकता पड़ने पर बड़े-से-बड़े कष्टों को भी झेलने को तैयार रहता है। असफलताएँ शीघ्र उसे निराशा की स्थिति में नहीं पहुँचा सकतीं क्योंकि आशावाद उसके खून में मिलकर धमनियों से होकर बहता है।

मनोवैज्ञानिक स्तर पर, युवक हमेशा नये-नये विचारों की खोज में रहता है। पुराने विचारों पर निर्दयतापूर्वक प्रश्नचिन्ह लगाये जाते हैं और अंत में निर्ममतापूर्वक त्याग दिये जाते हैं।

दूसरी ओर युवा-शक्ति उतावलेपन में भी बदल सकती है, और समाज में क्रूरतापूर्ण, कष्टदायी एवं हिंसात्मक गतिविधियों का भी कारण बन सकती है। मन की शक्तियाँ तुच्छ इन्द्रिय लोलुपता में नष्ट होकर मानसिक संतुलन और आत्म-संयम को खत्म कर सकती हैं। अत्यधिक साहसपन के कारण अधैर्य, बेचैनी और क्रोध की उत्पत्ति हो सकती है। आकांक्षाएँ उन्हें शीघ्रातिशीघ्र फल की प्राप्ति हेतु अधीर बना सकती हैं और असफल होने पर गहन निराशा की स्थिति में ला सकती हैं। सुख-शांति प्राप्त करने की कामना, जो सर्वसाधारण की स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उन्हें अधिक हानि पहुँचा सकती है क्योंकि युवाकाल में यह कामना अत्यधिक तीव्र होती है। सबसे अधिक हानिकारक है वीर पूजा की तरफ उनका झुकाव जो उन्हें निश्चित रूप से बौद्धिक एवं भावनात्मक गुलामी की जंजीर में जकड़ देता है।

ये सारी विशेषताएँ आधुनिक युवक में भी समान रूप से हैं। लेकिन आधुनिक होने या आधुनिक बनने की इच्छा रखने के कारण इनमें कुछ और विशेषताएँ हैं। जैसे शौकीन वस्त्र पहनना एवं बालों को संवारने के नये-नये तरीकों का प्रयोग, अँग्रेजी भाषा का जादुई असर, विज्ञान के प्रति श्रद्धा, पश्चिम से विरासत में मिली नशा और शराब की संस्कृति की ओर झुकाव, भोगपरायणता, नास्तिकता, धर्म तथा धार्मिक संस्थाओं के प्रति घृणा, होटलों, क्लबों, सिनेमा घरों में बार-बार गमन इत्यादि।

अब हम युवाओं की समस्याओं की ओर ध्यान केन्द्रित करें एवं उनके सही समाधान को ढूँढ़ने की चेष्टा करें। कोई भी ऐसा प्राणी नहीं है जिसे समस्याएँ न हों। वास्तविकता तो यह है कि समस्याएँ ही जीवित प्राणी को अपनी उन्नति करने के लिए बाध्य करती हैं। अतएव, समस्याओं की मौजूदगी को जीवन के एक अनिवार्य तथ्य के रूप में स्वीकार करना ही होगा। इसका अर्थ यह नहीं हुआ कि समस्याओं का समाधान किये बिना चुपचाप कायर की तरह उन्हें झेलते जाएँ।

सबसे गंभीर समस्या, जिसका सामना प्रत्येक युवक को करना पड़ता है—वह है शिक्षा और रोजगार के क्षेत्र में। शिक्षा किसी व्यक्ति को आवश्यक क्षमता एवं व्यावहारिक कुशलता प्रदान करती है जिससे वह अपना जीविकोपार्जन कर सके। यह एक अच्छा सामाजिक जीवन (Decent Social life) जीने की कला प्रदान करती है। यही कारण है कि हर युवक उच्च शिक्षा प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है।

लेकिन समाज के मध्यमवित्त एवं निम्नवित्त परिवारों के युवकों के लिए उच्च शिक्षा की संभावनाएँ बहुत ही कम होती हैं। शैक्षणिक संस्थाओं में नामांकन एक गम्भीर समस्या बनता जा रहा है। Donation, Capitation और भाई-भतीजावाद का बोलबाला हो गया है। छात्र अजीबोगरीब स्थिति में हैं कि सरकारी संस्थानों को चुनें, जिनमें अच्छाई, अनुशासन और कर्त्तव्य भावना का सर्वथा अभाव है या निजी संस्थानों को चुनें जिनमें प्रवेश पाने के लिए अधिक धन की आवश्यकता होती है। चूँकि अधिक सक्षम एवं योग्य व्यक्ति धन की वर्षा करने वाली नौकरी की तलाश में रहते हैं, इसीलिए साधारण श्रेणी के शिक्षित ही शिक्षण-कार्य के क्षेत्र में प्राय: प्रवेश करते हैं और शिक्षा के स्तर को और नीचे गिराने का कारण बनते हैं। पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं जैसी प्राथमिक शैक्षणिक सुविधाओं के बिना ही शिक्षण-संस्थानों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि ने भी शैक्षणिक स्तर के ह्रास में योग दिया है और आखिरकार छात्र ही इसके शिकार होते हैं। इन सारी समस्याओं में मुख्य समस्या है विभिन्न राजनीतिक दलों की शैक्षणिक संस्थानों में घुसपैठ। ये पार्टियाँ छात्रों की एकता को नष्ट कर तथा उन्हें विभिन्न गुटों में बाँटकर उनके छात्र जीवन को नष्ट कर रही हैं। छात्रों के बीच घिनौने रैगिंग प्रथा का भी उल्लेख यहाँ करना अनिवार्य है। छात्र के वेष में अपराधियों की यह काली करतूत है जिसके कारण कई युवकों के बहुमूल्य जीवन का अंत हो गया है।

अति भयंकर बाधाओं को पारकर शैक्षणिक प्रमाण-पत्र प्राप्त करने के बावजूद युवक राहत की साँस नहीं ले सकते। यहाँ समस्याओं का अंत नहीं बल्कि शुरुआत ही होती है। प्रचुर धन और काफी समय लगाने के बाद भी कई युवक आत्मनिर्भर होकर अपना जीविकोपार्जन नहीं कर सकते। वे किसी भी कार्य में इतने दक्ष नहीं होते कि विश्वास के साथ उसे अपने हाथ में ले लें। फिर सर्वत्र व्याप्त भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद के कारण उन्हें या तो नौकरी खरीदनी पड़ती है या किसी अन्य सही या गलत उपायों का सहारा लेना पड़ता है। यदि नौकरी पाने में किसी को सफलता हाथ भी लगती है तो वह ईमानदारी पूर्वक इतना धनोपार्जन नहीं कर सकता जिससे वह अपने दैनन्दिन जीवन की सारी आवश्यकताओं की पूर्त्ति अच्छी तरह कर सके क्योंकि सामान्य उपयोग की वस्तुओं का मूल्य आकाश छूता जा रहा है। यही वे सारे कारण हैं जो युवाओं को निराश कर देते हैं और उनका आवेश देर या सबेर विद्रोहाग्नि के रूप में फूट पड़ता है।

शिक्षा और बेरोजगार के अलावे और भी कई सामाजिक समस्याएँ हैं जो युवकों को प्रभावित कर रही हैं। उदाहरणार्थ क्षेत्रीयता, साम्प्रदायिकता, जातीयता, स्वयम्भू धर्मनेता एवं उनसे सम्बन्धित संस्था, काला धन, धूम्रपान, क्लब, सिनेमा घर इत्यादि। टेलीविजन भी युवाओं के जीवन पर मीठे विष की तरह प्रभाव डाल रही है।

इन समस्याओं पर यहाँ विचार करना उचित ही होगा। संसार में ऐसा कोई भी समाज नहीं है जो विभिन्न समूहों (groups) में विभाजित न हो। चाहे यह विभाजन धर्म के आधार पर हो अथवा क्षेत्र, आर्थिक स्थिति भाषा या अन्य किसी चीज के आधार पर। हाथ की अंगुलियों की तरह इस तरह का विभाजन भी एक प्राकृतिक घटना है। लेकिन विभिन्न समूहों के बीच आपसी वैमनस्य, मतभेद एवं शत्रुता ही सारी बुराइयों के कारण एवं प्रगति के बाधक हैं। कभी-कभी इनके कारण मानव के अस्तित्व पर भी खतरा उत्पन्न हो जाता है।

क्षेत्रीय विभाजन प्रशासकीय सुविधा प्रदान करता है, धार्मिक विभाजन समान धर्मावलम्बियों के बीच प्रेम एवं एकता का बोध कराता है, पेशा के आधार पर विभाजन जाति का सृजन करता है, आर्थिक लाभ पहुँचाता है और भाषा के आधार पर विभाजन भाषा के विकास तथा शिक्षा के विस्तार में सहायक होता है। लेकिन यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इन सारी अच्छाइयों का आज लोप-सा हो गया है और कुछ स्वार्थ से प्रेरित लोग इन विभाजनों को स्वार्थ-पूर्ति का साधन बना बैठे हैं।

यद्यपि सभी धर्मों का अन्तिम उपदेश ईश्वर का पितृत्व, मानवों का भ्रातृत्व और सभी के बीच प्रेम ही है फिर भी सम्प्रदायों में आबद्ध धर्म एवं उसके तथाकथित धार्मिक नेतागण स्वार्थ से प्रेरित होकर अपने मनगढ़न्त विचारों द्वारा मानव-मानव के बीच घृणा एवं अलगाव का बीज बोते हैं जो कालान्तर में साम्प्रदायिक हिंसा का रूप धारण कर लेता है।

जहाँ तक धन सम्पत्ति का प्रश्न है जितना कम बोला जाय उतना ही अच्छा होगा। कोई भी समझदार व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि रुपये-पैसे की एकदम आवश्यकता नहीं है। लेकिन यह भी बुद्धिमानी नहीं है कि इन को ही जीवन का मुख्य ध्येय बना लें। यह कार्य वैसा ही होगा जैसे अंगीठी की अग्नि को फैलने देकर अपने घर को भी जला डालना।

यही बात राजनीति के साथ भी है। राजनीति का कार्य एक अच्छे राजनीतिज्ञ का निर्माण करना है जो ईमानदारी और बुद्धिमत्तापूर्वक राज्य शासन चला सके। इसके विपरीत राजनीति यदि केवल हार-जीत का खेल बनकर रह जाय तो यह समाज को विखंडित ही करेगी। जब सम्पूर्ण सामाजिक ढांचा (Social structure) चरमराकर गिर जाता है तो राजनीतिक नेता ही इसके दुष्परिणाम को नहीं भोगते बल्कि आम जनता भी इसका शिकार हो जाती है जैसे किसी नाव में छेद करने वाला ही नहीं डूबता बल्कि वे सारे लोग साथ ही डूब जाते हैं जो मूकदर्शक बने रहते हैं।

धूम्रपान, नशाखोरी, शराबखोरी आदि ऐसी आदतें हैं जिनके आदी (Addicted) लोग शीघ्र ही हो जाते हैं। पश्चिम में औद्योगीकरण के बढ़ते चरण एवं विकासशील देशों में इसके अन्धाधुन्ध अनुकरण ने इन बुराइयों को जन्म दिया है जो तीव्रगति से बढ़ती जा रही हैं। चिकित्सा विज्ञान ने अब पर्याप्त प्रमाण एकत्र कर लिया है जिससे इस बात की पुष्टि की जा सके कि तम्बाकू पीने के कारण फेफड़े का कैंसर और श्वास-प्रश्वास प्रणाली, रक्त-संचार प्रणाली, नसों तथा आँतों आदि से सम्बन्धित अनेक व्याधियाँ होती हैं। अल्कोहल के घातक प्रभाव के बारे में सब जानते हैं इसलिए जिस किसी को इसका थोड़ा-सा ज्ञान हो उसे इसका व्यवहार कदापि नहीं करना चाहिए। अल्कोहल रक्त में शीघ्र घुल जाता है। खून के साथ ०.०५% भी मिल जाने पर मन अनियंत्रित हो जाता है। ०.३०% से लेकर ०.६०% की उपस्थिति रहने पर नशा की स्थिति, बेहोशी और कभी-कभी मृत्यु तक हो जाती है। यह एक बहुत बड़े दुःख की बात है कि हमारे युवाबन्धु विचार-शून्य होकर इस प्राण घातक आदत के शिकार बनते जा रहे हैं और शारीरिक तथा मानसिक दोनों की शक्ति को व्यर्थ में क्षय कर रहे हैं। एक अन्य तरह की बुराई जो हाल ही में युवाओं के मध्य तीव्रगति से प्रवेश कर रही है, वह है नशीले पदार्थों का सेवन। ये नशीले पदार्थ जिसे नारकोटिक्स (Narcotics) भी कहते हैं युवकों को उतनी ही हानि पहुँचा रहे हैं जितनी क्षति

किसी बड़े युद्ध के कारण किसी सभ्यता और संस्कृति की होती है। युद्ध के कारण अनगिनत ,लोग भले ही मारे जायँ और कोई सभ्यता भले ही लुप्त हो जाय लेकिन बचे लोग शीघ्र ही सफलतापूर्वक अपने उजड़े घर को बसा लेते हैं। परन्तु जब ये नशीले पदार्थ युवकों के शरीर को बर्बाद और मन को दुर्बल बना डालते हैं तब वे न केवल जीवित मुर्दा वन जाते हैं बल्कि भावी पीढ़ियों को भी भयंकर हानि पहुँचाते हैं। अमेरिका में हेरोइन जैसे नशीले पदार्थों की खरीद बिक्री करनेवालों के लिए २० बर्षों तक के कठोर कारावास और मृत्यु दंड तक का भी प्रावधान होने के बावजूद इन पदार्थों के प्रयोग और वितरण पर अभी तक रोक नहीं लगायी जा सकी है। अनैतिक यौन-संबंध (Promiscuity) एक ऐसी बुराई है जो हमारे युवकों की जवानी को निगल रही है। इसके कारण अप्राकृतिक गर्भपात और गुप्तरोगों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। गर्भपात अक्सर मृत्यु का भी कारण बन जाता है।

शराबखोरी, नशाखोरी और अनैतिक यौन संबंधों के कारण ही कई अन्य बुराइयाँ पनपती हैं जैसे अपराध आदि। खासकर हिंसात्मक अपराध में दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है जिसके चलते दैनन्दिन जीवन भी असुरक्षित होता जा रहा है। शायद चल-चित्र के सभी अच्छे उद्देश्य हवा में विलीन हो गये हैं और आज फिल्म निर्माताओंने अपनी आँखें सिर्फ बॉक्स-ऑफिस पर ही टिका कर लोगों की कुप्रवृत्तियों को जाग्रत ही नहीं किया है बल्कि प्रत्यक्ष रूप से यौनाचार और अपराध को उत्साहित भी किया है।

अभी तक जो कुछ भी कहा गया है वह केवल युवकों के अन्दर निहित खामियों का ही उल्लेख हैं जो निराशा से भरे भविष्य की ओर इंगित करता है। लेकिन मुख्य उद्देश्य कुछ और ही है। जवतक बीमारी की सही पहचान नहीं हो जाती तवतक समुचित इलाज मुश्किल है। जबतक समस्याओं ,उनकी प्रकृति एवं परिमाण तथा कारण के संबंध की सही-सही जानकारी नहीं प्राप्त हो जाती तबतक कोई संतोषप्रद हल नहीं प्राप्त किया जा सकता।

अब हमें ऐसे साधनों एवं उपायों का उल्लेख करना चाहिए जिनकी सहायता से युवा-बन्धु अपनी समस्याओं का सामना कर सकें और इन समस्याओं का संभव हल निकालकर या तो उनका अन्त कर दें या उन्हें प्रभावहीन कर दें। स्वामी विवेकानन्द के मतानुसार शिक्षा ही सारी समस्याओं के लिए रामवाण दवा है। वर्तमान शिक्षा पद्धति में सही सुधार की नितांत आवश्यकता है। विभिन्न शिक्षा आयोगों जैसे कोठारी आयोग, राधाकृष्णन आयोग इत्यादि आयोगों की अनुशंसाओं पर गंभीरतापूर्वक विचार-कर उनमें से जो वर्तमान समय के लिए उपयोगी हो उसे शीघ्रताशीघ्र लागू किया जाना चाहिए। शिक्षा को प्रवेशिकोत्तर (Intermediate) स्तर तक रोजगारोन्मुखी वनाकर दोहरा फायदा उठाया जा सकता है। सर्वप्रथम युवक सरलता से अर्थोपार्जन कर अपना और अपने परिवार वालों का भरण-पोषण कर सकेंगे, फिर विश्व-विद्यालय पर से व्यर्थ का भार कम हो जाएगा और उच्चतर शिक्षा एवं शोध कार्यों को अधिक प्रभावशाली एवं उच्च स्तर का बनाया जा सकेगा। एक बार जब यह मौलिक सुधार हो जाता है तो शिक्षा एवं रोजगार के क्षेत्र की अनेक समस्याओं से युवावर्ग को अनायास छुटकारा मिल जाएगा। यद्यपि यह सुधार सरकार की नीतियों पर आधारित है फिर भी युवकों को चाहिए कि वे अपनी शक्ति को अशैक्षणिक कारणों एवं सफलता के लघु-पथों की खोज में न क्षय कर शिक्षा पद्धति में सुधार के हेतु सरकार पर दबाव डालें।

अंग्रेजी शिक्षा पद्धति, जो आज भी हमारी शिक्षा पद्धति, है, के हानिकारक प्रभावों में प्रबलतम प्रभाव यह है कि जब किसी व्यक्ति को अंग्रेजी वर्णमाला का थोड़ा सा भी ज्ञान हो जाता है तो वह अहंकार से मत्त हो जाता है और ज्यों ही कोई डिग्री प्राप्त कर लेता है वह शारीरिक श्रम को घृणा की नजर से देखने लगता है। (गीता की इस भूमि में यह कैसी विडंबना है जिसने कर्म-योग जैसे महान् आदर्श की शिक्षा दी है!) यहाँ कार्यों

की कोई कमी नहीं है और धन कमाने के भी कई स्रोत हैं। उदाहरणस्वरूप कुशल कारीगरों, दक्ष मजदूरों एवं अन्य मानसिक तथा शारीरिक श्रम करनेवालों की नितांत आवश्यकता है। कृषि के क्षेत्र में, दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में, मुर्गीपालन एवं अन्य लघु उद्योगों के क्षेत्र में बहुत सारे अवसर भरे पड़े हैं। पश्चिमी देशों में शिक्षित लोग ही इन क्षेत्रों में कार्य करते हैं और कोई यह नहीं सोचता कि अपने हाथों से कार्य करना शान और प्रतिष्ठा के खिलाफ है। अतएव युवाओं को चाहिए कि अपने बहुमूल्य समय को गलियों और चौराहों पर भटकने तथा सिनेमा घरों की खाक छानने की अपेक्षा इन कार्यों को शौक के तौर पर ही सही, लेकिन जरूर सीखें और व्यवहार में लावें।

जहाँ तक शिक्षण-संस्थाओं में राजनीतिक गति विधियों का बोलवाला होने एवं छात्रों द्वारा उनमें सम्मिलित होने से उत्पन्न समस्याओं का सवाल है, इसके लिए विभिन्न राजनीतिक दल एवं उनके सिद्धान्त-हीन नेतागण जिम्मेदार हैं। समझदार छात्रों को चाहिए कि वे इन राजनेताओं को शिक्षण-संस्थाओं की चहारदीवारी के अन्दर फटकने न दें।

जहाँ तक साम्प्रदायिकता, जातीयता, क्षेत्रीयता एवं भाषावाद से उत्पन्न सामाजिक व्याधियों का प्रश्न है, कुछ राजनैतिक नेतागण एवं तथाकथित सामाजिक कार्यकर्त्तागण पर्दे के पीछे रहकर अपनी तुच्छ स्वार्थ सिद्धि के लिए इन व्याधियों को फैलाते हैं। अब प्रबुद्ध मार्ग-दर्शकों को चाहिए कि वे युवकों का सही मार्गदर्शन करें और देश की एकता और अखंडता के प्रति उनकी स्वाभाविक रुचि को बढ़ावें। युवकों को भी चाहिए कि वे इन्हीं लोगों के साथ सलाह मसविरा करें एवं उनको ही मार्ग दर्शन के लिए आमंत्रित करें।

धूम्रपान, शराबखोरी एवं नशाखोरी रोकने का एकमात्र उपाय यह है कि हम उसे शुरू ही न करें क्योंकि इलाज की अपेक्षा रोकथाम (Prevention) अधिक बेहतर होता है। समझदार नवयुवकों को चाहिए कि वे संगठित होकर अपने उन भाइयों को इन भयंकर रोगों से बचा लें जो पहले से ही इनके शिकार हो चुके हैं। योग्य चिकित्सक एव कुशल सामाजिक कार्यकर्त्ता भी इस क्षेत्र में काफी सहायता प्रदान कर सकते हैं।

और फिर अनैतिक देह-संबंध ! इन मुक्त देह संबंधों (Promiscuity) के विरुद्ध तो माता-पिता, शिक्षक एवं युवा सभी को संयुक्त रूप से जेहाद छेड़ देना चाहिए। युवा-वर्ग को इस बात का ज्ञान अच्छी तरह कराना होगा कि युवावस्था की संचित शक्ति ही बुढ़ापे में काम आयेगी। भ्रष्ट जीवन व्यक्ति को गरीबी और तरह-तरह की बीमारियों का शिकार बना देता है। नारी-जाति के प्रति मातृत्व की भावना का विकास इन समस्याओं को कम करने का एक उपाय है। प्रत्येक मानव को चाहे वह पुरुष या स्त्री हो, दिव्य-चेतना के रूप में, आत्मा के रूप में देखने पर काम-भावना को वहुत हद तक शमित किया जा सकता है। इस तरह की दृष्टि प्रदान करना शिक्षा पद्धति का ही एक अनिवार्य अंग होना चाहिए। चरित्र हननकारी चलचित्रों का योजनाबद्ध एवं संयुक्त बहिष्कार तब तक किया जाना चाहिए जब तक कि फिलम निर्मातागण अच्छी फिल्मों का निर्माण कर दर्शकों के नैतिक स्तर को ऊँचा करने के लिए कृतसंकल्प नहीं होते।

अभी तक जितने भी उपायों का जिक्र किया गया है वे सभी अच्छे उपाय होने के बावजूद काफी नहीं है। वे गठिया रोग निवारणार्थ सामान्य दवा की तरह हैं। जब दर्द कमर में मालूम होता है और दवा खायी जाती है तो वह घुटने के जोर में चला जाता है। वहाँ से हटाने पर कंधों के जोड़ पर चला जाता है। इस प्रकार यह सिर्फ स्थान परिवर्तन करता है लेकिन रोगी को कभी छोड़ता नहीं। जबतक कोई ऐसी प्रभावकारी दवा नहीं दी जाती है जो रोग को समूल नष्ट कर दें तबतक कोई स्थायी इलाज की आशा नहीं की जा सकती।

फिर युवाओं की समस्याओं का प्रकृत समाधान क्या है ? गंभीरतापूर्वक सोचने पर यह बात शीघ्र समझ में आ जायगी कि मानवीय स्वभाव में ही कुछ मौलिक एवं प्रभावकारी परिवर्त्तन करना होगा। मानव ही है जो झूठ बोलता है, चोरी करता है, लूटमार करता है, व्यभिचार करता है और हत्या भी करता है। इन सारे क्रिया-कलापों को वे सुख एवं शांति प्राप्ति के लिए ही करते हैं लेकिन भ्रमवश वे सुख एवं शांति प्राप्ति के गलत तरीकों को अपना लेते हैं। वे ऐसे अपराधों को इसलिए करते हैं कि उनका दिमाग सही दिशा में कार्य नहीं करता है। यदि उनके मन में शुद्ध और कल्याणकारी विचारों को भर दिया जाए और उनकी प्रवृत्तियों को सही दिशा में मोड़ दिया जाए तो फिर कुछ करना शेष नहीं रहेगा। यह सही मार्ग है—अधिक-से-अधिक लोगों का अधिक-से-अधिक हित करना, यानी बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय अपने आपका समर्पण। एक शब्द में हम यों कहें कि चरित्र ही ऐसी चीज है जिसका निर्माण युवाओं में सर्वप्रथम करना होगा। यह तभी संभव होगा जब शिक्षा की पद्धति प्रारम्भिक स्तर से ही चरित्र-निर्माणकारी हो। चूँकि एक जलता दीपक ही अन्य दीपकों को जला सकता है इसलिए माता-पिता, शिक्षक एवं समाज के मार्गदर्शकों को भी एक आदर्श जीवन व्यतीत करना होगा जहाँ से युवक प्रेरणा ग्रहण कर सकेंगे। यहीं पर वास्तविक धर्म स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में जिसका उद्देश्य मानव के अंदर निहित पूर्णता को प्रकट करना है, युवाओं के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकता है। धर्म को सिर्फ बाह्य अनुष्ठानों, पूजा-पद्धतियों एवं लोकाचार का घनीभूत रूप समझने का भ्रम नहीं करना चाहिए। यह ईश्वर के पितृत्व एवं मानवों के भ्रातृत्व का भी उपदेश करता है। यदि ईश्वर हमारे माता-पिता हैं और हम सभी उनकी संतान हैं तो यह हमारा धर्म है कि हम एक-दूसरे को प्रेम करें और असहायों की सेवा करें। यही कारण है कि स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की, "त्याग और सेवा ही भारत का आदर्श है। इनकी धाराओं में तीव्रता लाना होगा और सबकुछ अपने आप हो जायगा।" यही सभी समस्याओं का अनिवार्य एवं अंतिम समाधान है। यही वह उपाय है जिसकी सहायता से युवा-वर्ग अपनी सभी समस्याओं का सामना कर सकते हैं।

श्रीरामकृष्ण और युवा वर्ग

—स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम
वाराणसी ।

श्रीरामकृष्ण वचनामृत (प्रथम भाग, चतुर्थ परिच्छेद) में ग्रन्थकार मास्टर महाशय के दक्षिणेश्वर गमन के एक दिन की घटना का वर्णन निम्न प्रकार है :

दिन के तीन बजे मास्टर फिर आये। श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में बैठे हैं। फर्श पर चटाई बिछी है। नरेन्द्र, भवनाथ तथा और भी दो एक लोग बैठे हैं। सभी लड़के हैं। उम्र उन्नीस, बीस के लगभग होगी। प्रफुल्लमुख श्रीरामकृष्ण तखत पर बैठे हुए लड़कों से सानन्द वार्तालाप कर रहे हैं।

मास्टर को कमरे में घुसते देख श्रीरामकृष्ण ने हँसते हुए कहा, "यह देखो, फिर आया।" सब हँसने लगे !··· श्रीरामकृष्ण नरेन्द्रादि भक्तों से कहने लगे, "देखो, एक मोर को किसी ने चार बजे अफीम खिला दी। दूसरे दिन से वह अफीमची मोर ठीक चार बजे आ जाता था। यह भी अपने समय पर आया है।" सब हँसने लगे।... ...

श्रीरामकृष्ण लड़कों से हँसी-मजाक करने लगे। मालूम होता था कि मानो वे सब एक उम्र के हैं। हँसी की लहरें उठने लगीं। मानो आनन्द की हाट लगी हो। मास्टर महाशय श्रीरामकृष्ण का यह युवक-सदृश रूप देखकर आश्चर्यान्वित होकर सोचने लगते हैं कि क्या ये वही व्यक्ति हैं जिन्हें उन्होंने समाधिस्थ होते देखा था, तथा जिन्होंने मूर्ति पूजा के विषय में उनका तिरस्कार किया था? यह तो मास्टर महाशय का श्रीरामकृष्ण के पास प्रारम्भिक गमनागमन ही था। धीरे-धीरे वे श्रीरामकृष्ण को विभिन्न भावों और रूपों में देखकर धन्य हुए थे। कभी तो श्रीरामकृष्ण ठीक ५ वर्ष के बालक की तरह व्यवहार करते थे, तो कभी स्नेहमयी माता की तरह। कभी वे भावोन्मत्त हो उद्दाम नृत्य करते थे, तो कभी गहरी समाधि में बाह्य ज्ञान शून्य हो जाते थे। अनन्त भावमय श्रीरामकृष्ण कभी आदर्श गुरु की तरह अपने शिष्यों को उपदेश देते थे, तो कभी उन्हीं के समवयस्क बन उन युवक शिष्यों के साथ हँसी-मजाक करते, हँसा-हँसाकर लोट-पोट कर देते थे। वस्तुतः उच्चकोटि के आध्यात्मिक महापुरुषों की यह विशेषता होती है कि वे वृद्ध के साथ वृद्ध, युवक के साथ युवक तथा बालक के साथ बालक सदृश व्यवहार करने में समर्थ होते हैं।

श्रीरामकृष्ण के पास सभी वर्ग के लोग आते थे। स्कूल व कॉलेज में पढ़ने वाले अनेक युवक भी उनके पास केवल आध्यात्मिक मार्ग-दर्शन के लिए ही नहीं बल्कि इसलिए भी आते थे कि उनमें वे अपने उच्चतम आदर्शों की प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति कर पाते थे। उनके सान्निध्य में प्राप्त विशुद्ध सात्विक आनन्द इन युवकों को उनके निकट आकृष्ट करता था। श्रीरामकृष्ण को भी युवक विशेष प्रिय थे। वे कहते थे कि वृद्ध ससांरी लोगों का मन बिखरे हुए सरसों के दानों की तरह है, जिन्हें पुनः बटोरना अत्यन्त कठिन होता है। इसके विपरीत, युवकों का मन पत्नी, बच्चों, सांसारिक जिम्मेदारियों एवं झंझटों के कारण विभक्त एवं बिखरा नहीं होता। अतः वे शीघ्र ही अपने मन को एक विषय में एकाग्र कर सकते हैं। बड़ों को नाना चिन्ताएँ सताती रहती हैं। युवक निश्चिन्त रहते हैं। अतः युवावस्था ही साधना करने का सर्वश्रेष्ठ काल है।

श्रीरामकृष्ण एक आदर्श युवक—

श्रीरामकृष्ण के उपलब्ध चित्रों में वे एक इकहरे, शरीर के सामान्य गठन वाले व्यक्ति दिखाई देते हैं। देह से वृद्ध एवं बुद्धि से प्रौढ़ एवं परिपक्व होते हुए भी उनमें आदर्शवाद, उत्साह, तेजस्विता, पूर्ण सजगता, आदि युवकोचित गुण भी विद्यमान थे। प्रारम्भिक जीवन में कट्टर रूढ़िवादी होते हुए भी उनमें प्रचलित अंध-विश्वासों एवं समाज के ढोंग एवं खोखलेपन के प्रति विद्रोह की भावना भी थी, जिसके फलस्वरूप अन्तत: वे स्वयं अपने कट्टरवाद के ऊपर उठने में समर्थ हुए थे। अर्थकरी, केवल रोजगार जुटाने वाली शिक्षा से असन्तुष्ट हो उन्होंने किशोरावस्था में ही उसे अस्वीकार कर दिया था। आज का भारतीय युवक भी वर्तमान शिक्षा-प्रणाली से असन्तुष्ट प्रतीत होता है। लेकिन उनके पास इसका कोई विकल्प नहीं है, जबकि श्रीराम-कृष्ण के पास था। विज्ञान, गणित, न्याय एवं संसार विषयक अपरा विद्या का परित्याग कर उन्होंने परमात्मा-विषयक परा विद्या को ग्रहण किया था। यही कारण है कि परवर्ती काल में सांसारिक-भौतिक विद्याओं में पारंगत अनेक विद्वान एवं मनीषी उनके चरणों में बैठकर अपने को धन्य समझते थे। प्रारम्भ में वे इतने कट्टर थे, कि दक्षिणेश्वर मन्दिर का प्रसाद भी ग्रहण नहीं करते थे क्योंकि उसका निर्माण करने वाली रानी रासमणि का जन्म हीन कुल में हुआ था। लेकिन परवर्ती काल में अपने उच्च कुल के अभिमान को नष्ट करने के लिए उन्होंने अपने लम्बे-लम्बे बालों से एक मेहतर का शौचालय साफ किया था, तथा भिखमंगों के उच्छिष्ट को साक्षात् नारायण के प्रसाद के रूप में ग्रहण किया था। शिक्षा एवं सामाजिक क्षेत्र में श्रीरामकृष्ण के क्रान्तिकारी दृष्टिकोण का अनुसरण क्या आज का युवक कर सकता है ?

श्रीरामकृष्ण अत्यन्त साहसिक पुरुष थे। जवानी के जोश में युवक दुर्गम पर्वतारोहण, साइकिल से दीर्घ-कष्टप्रद देश-भ्रमण, मीलों चौड़ी नदी या धाराओं को तैरकर पार करना आदि साहसिक कार्य करते हैं। लेकिन ईश्वर की खोज, अज्ञात अर्न्तजगत् का अनुसंधान, दुर्गम आन्तरिक यात्रा जिसे छुरे की धार पर चलने के समान दुरतिक्रम्य कहा गया है, बिरले ही कोई व्यक्ति करता है। श्रीरामकृष्ण सामाजिक विधि-निषेध, पारिवारिक आशा-आकांक्षाओं तथा लोगों के कथन एवं मान्यताओं की पूर्ण उपेक्षा कर पूरी लगन और एकाग्रता के साथ इस साहसिक अन्वेषण में लगे थे। यही नहीं, उनमें ज्ञानार्जन की प्रबल पिपासा थी। माँ जगदम्बा का साक्षात्कार करने के बाद वे इसी जिज्ञासा से प्रेरित हो अन्य धर्मों की साधना में प्रवृत्त हुए थे — यह जानने के लिए कि क्या ये विभिन्न पथ भी भगवान तक ले जाते हैं ?

श्रीरामकृष्ण के आदर्शवाद का तो कहना ही क्या ! सामान्यत: युवकों का आदर्शवाद, घूस न लेना न देना, रास्ते चलते किसी असहाय की सहायता करना, खादी के कपड़े पहनना अथवा इसी तरह के कुछ नैतिक अथवा सेवापरक कार्य तक ही सीमित रहता है। लेकिन श्रीरामकृष्ण ने सत्य, त्याग, अपरिग्रहादि उच्च नैतिक आदर्श को शत-प्रतिशत अपनाया था। किसी भी आदर्श का उन्होंने अधूरा पालन नहीं किया। वे उसकी चरम परिणति तक पहुँचे थे। वे सिक्के अथवा धातु को स्पर्श तक नहीं कर सकते थे। क्योंकि वह धन-अपरिग्रह उनका ऐसा था कि वे पुड़िया भर मुखशुद्धि का मसाला अपने पास नहीं रख पाते थे। अगर गलती से कोई सत्य विरोधी आचरण हो जाये तो उनके पैर लड़खड़ा जाते थे।

यौवन में देह विकास के साथ-ही-साथ मस्तिष्क एवं हृदय का भी विकास होता है। युवक भावप्रवण होता है। यह सहृदयता सामान्यत: प्रेम के रूप में— विशेषकर किसी युवती अथवा परिवार के किसी विशेष के प्रति आकर्षण के रूप में अभिव्यक्ति होती है। श्रीराम-कृष्ण भी किसी युवक की ही तरह — यही नहीं उससे भी अनन्त गुना अधिक हृदयवान थे। लेकिन उन्होंने प्रेम

को किसी सीमित पात्र में नहीं उड़ेला, बल्कि हृदय के समग्र उद्वेग को उन्होंने परम प्रेमास्पद परमात्मा की ओर—जिसे वे माँ कहते थे, केन्द्रित कर दिया -- उस परमात्मा की ओर जो संसार के सभी नर-नारियों की आत्मा हैं। परिणाम यह हुआ कि परमात्मा के माध्यम से वे संसार के सभी प्राणियों को प्रेम करने में समर्थ हुए।

युवक सामान्यतः आशावादी एवं आनन्दप्रिय होते हैं। श्रीरामकृष्ण एक सदानन्दमय पुरुष थे। शोक संतप्त गृहस्थों के शोक को दूर करने, तथा उन्हें सान्त्वना प्रदान करने में वे सदा तत्पर रहते थे। दक्षिणेश्वर के उनके कमरे में भजन, कीर्तन निरन्तर होते रहते हैं। आनन्दोत्सव सदा ही लगा रहता था। कभी वे स्वयं नृत्य करते थे, तो कभी अपने गन्धर्व-कण्ठ से गान करते थे, और कभी कीर्तनियों की नकल उतारकर भक्तों को हँसते-हँसाते लोट-पोट कर देते थे। लेकिन उनके हँसी-मजाक सदा मन को पवित्र तथा उदात्त करने वाले होते थे। यही कारण था कि एक बार उनके सात्विक आनन्द का आस्वादन पाने के बाद लोग अफीमची मोर की तरह बार-बार उनके पास जाने के लिए लालायित रहते थे।

श्रीरामकृष्ण वचनामृत के पाठ तथा उनके चित्र को देखने से लोगों के मन में यह धारणा हो सकती है कि श्रीरामकृष्ण एक कोमल एवं सरल व्यक्ति रहे होंगे। यह बात सत्य है भी। लेकिन उनमें महान् तेजस्विता भी थी। जब वे कमरे के सभी दरवाजे बन्द करके अपने युवक भावी संन्यासी शिष्यों को ओजस्वी भाषा में त्याग और वैराग्य का उपदेश देते थे तब वे सिंह तुल्य, महा तेजस्वी पुरुष हो जाते थे। उन्होंने जीवन में असत्य, छल अथवा भोग के साथ कभी समझौता नहीं किया था।

इन विभिन्न यौवनोचित गुणों के कारण श्रीरामकृष्ण अनेक आदर्शवादी, मेधावी एवं उत्साही युवकों को आकृष्ट करने में सफल हुए थे।

श्रीरामकृष्ण एक आदर्श शिष्य —

श्रीरामकृष्ण ने अनेक प्रकार की साधनाएँ की थीं तथा उनके लिए उन्हें कई गुरुओं की सहायता प्राप्त करनी पड़ी थी। श्री केनाराम भट्टाचार्य से वे शक्ति-मंत्र में दीक्षित हुए थे। भैरवी ब्राह्मणी ने तंत्र साधना में उनका मार्गदर्शन किया था। तोतापुरी उनके वेदांत गुरु थे तथा गोविन्द राय नामक सूफी से उन्होंने इस्लाम की साधना सीखी थी। सभी गुरुओं ने उन्हें उत्तम शिष्य पाया था। तंत्र शास्त्र की अत्यंत कठिन, भयप्रद, एवं अरुचिकर साधनाओं में भी उन्होंने तीन दिनों में सिद्धि प्राप्त कर ली थी। वेदान्त साधना के समय उन्हें अपनी चिर-परिचित, अत्यन्त प्रिय माँ जगदम्बा के रूप को भी ज्ञान खड्ग द्वारा काटना अर्थात् विचार द्वारा मिथ्या सिद्ध कर त्यागना पड़ा था। इस सफलता का रहस्य था गुरु के आदेश का पूर्ण निष्ठा के साथ अक्षरशः पालन। अपने सभी गुरुओं के प्रति उनमें गंभीर श्रद्धा-भक्ति का भाव था। वे वेदान्त-साधना के अपने गुरु श्री तोतापुरी का नाम अपने मुँह से उच्चारण करने के बदले "न्यांगटा" अर्थात् नागा कहा करते थे। गुरु के नाम का उच्चारण न करना गुरु के प्रति श्रद्धा का द्योतक है।

श्रीरामकृष्ण एक आदर्श गुरु—

श्रीरामकृष्ण का एक और पक्ष युवावर्ग से सम्बन्धित है और वह है उनका गुरु भाव। श्रीरामकृष्ण एक आदर्श गुरु थे। वे अपने प्रत्येक शिष्य को उसके मानसिक गठन एवं स्वभाव के अनुरूप उपदेश देते थे। अगर कोई शिष्य भक्तिमार्गी होता तो वे उससे भक्तिपरक पुस्तकें पढ़ने तथा भक्तों के साथ मिलने-जुलने को कहते। यदि उनका कोई शिष्य विवेक-विचार युक्त ज्ञान मार्ग का अधिकारी होता तो वे उसे उसी दिशा में प्रेरित करते थे। वे न तो किसी का भाव नष्ट करते थे और न ही अपने सभी शिष्यों को एक ही ढाँचे में ढालने का, केवल एक ही पथ अवलम्बन करवाने का प्रयास करते थे।

अपने शिष्यों के दोषों को दूर करने की उनकी शैली भी मौलिक एवं शिष्य के स्वभाव के अनुरूप होती थी। एक उदाहरण द्वारा इसे समझा जा सकता है। एक बार उनके शिष्य निरंजन नौका से उनके पास आ रहे थे। रास्ते में कुछ यात्री श्रीरामकृष्ण की निंदा करने लगे।

यह सुनकर निरंजन क्रुद्ध हो गये, तथा नौका के दोनों ओर अपने पैर जमाकर खड़े हो गये। और अपने बलिष्ठ शरीर से जोर-जोर से नौका हिलाते हुए निन्दा कर्ताओं से कहने लगे कि यदि वे श्रीरामकृष्ण के निन्दावाद को बन्द नहीं करेंगे तो वे नौका सहित सभी को डुबा देंगे। भयभीत यात्रियों ने उनसे क्षमा माँगी। दक्षिणेश्वर पहुँचने पर उन्होंने जब यह वृतान्त श्रीरामकृष्ण को कहा तो उन्होंने निरंजन की भर्त्सना करते हुए कहा कि उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए—"क्रोध बहुत बुरी चीज है—देखो, तुम क्रोध के वश में हो, अनेक निर्दोष लोगों को डुबाने वाले थे।" ठीक यही घटना योगेन के साथ घटी। लेकिन योगेन यह सोचकर कि ये यात्री श्रीरामकृष्ण के बारे में नहीं जानते, अज्ञानी हैं, अतः इनकी बातों को महत्व नहीं देना चाहिए, चुप रहे। जब श्रीरामकृष्ण ने यह सुना तो उन्होंने योगेन की भर्त्सना करते हुए विपरीत बात कही। कहा, "शास्त्रों में लिखा है कि गुरु निन्दा सुनना महापाप है, अगर गुरु निन्दा हो रही हो, या तो उसका प्रतिकार करना चाहिए या उस स्थान से चले जाना चाहिए"। यह स्मरण रहे कि योगेन का शरीर दुर्बल था, तथा वे कोमल स्वभाव के थे। श्रीरामकृष्ण ने इस कोमलता को जो आध्यात्मिक जीवन में बाधा बन सकती थी, दूर करने के लिए ऐसा उपदेश दिया था। इसके विपरीत, गरम मिजाज बलिष्ठ निरंजन के क्रोध को दूर करने के लिए उन्होंने उसे विपरीत कार्य का उपदेश दिया था।

श्रीरामकृष्ण के छोटे-छोटे उपदेशों में गूढ़ अर्थ निहित रहता था। इसलिए वे चाहते थे कि उनके शिष्य उनके उपदेशों का अक्षरशः पालन करें। एक उदाहरण द्वारा यह बात समझ में आ जायेगी। इन्हीं योगेन को एक बार उन्होंने अपने कमरे से एक तिलचट्टा पकड़कर दिया। ओर बाहर ले जाकर मार डालने को कहा। कोमल स्वभाव योगेन ने उसे बाहर ले जाकर बिना मारे छोड़ दिया। लौटने पर श्रीरामकृष्ण ने पूछा कि उन्होंने कीड़े को मारा या नहीं? योगेन के यह कहने पर कि उन्होंने उसे बिना मारे छोड़ दिया है, श्रीरामकृष्ण असंतुष्ट हो कहने लगे कि गुरु की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया करो, अन्यथा कष्ट पाओगे। वस्तुतः योगेन को अपने कोमल स्वभाव के कारण अनेक कष्ट झेलने पड़े थे।

गुरु श्रीरामकृष्ण की एक विशेषता यह भी थी कि अपने शिष्यों की परीक्षा तो लेते ही थे, पर शिष्यों द्वारा भी स्वयं की परीक्षा करवाने में नहीं हिचकते थे। यही नहीं जब उनके शिष्य उनकी परीक्षा करते थे तो वे प्रसन्न हो कहते थे, साधु की परीक्षा दिन में करो, रात में भी करो, और तब उसे स्वीकार करो। उनके शिष्यों में स्वामी विवेकानन्द ने उनकी सबसे अधिक परीक्षा ली थी। श्रीरामकृष्ण कहते थे कि पैसा छूने से उन्हें तीव्र वेदना होती है। कथन की सत्यता जानने के लिए स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण को बिना बताये उनके आसन के नीचे एक रुपया छिपा दिया था। ज्यों ही श्रीरामकृष्ण अपने कमरे में आकर आसन पर बैठे त्यों ही वे वेदना से कराह उठे।

श्रीरामकृष्ण अपवित्र लोगों का छुआ अन्न या जल ग्रहण नहीं कर सकते थे। एक दिन एक तिलकधारी व्यक्ति ने उन्हें गिलास में चाय पीने को दी, लेकिन वे पी नहीं सके। स्वामी विवेकानन्द वहीं खड़े थे। उनके द्वारा बाद में पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह तिलक धारी व्यक्ति दुश्चरित्र था।

उपसंहार

आज का युवा-वर्ग यह शिकायत कर सकता है कि उसके मार्गदर्शन के लिए श्रीरामकृष्ण जैसे आदर्श गुरु आज दुर्लभ हैं। यह सत्य होते हुए भी युवा वर्ग अपने स्वयं के प्रति तथा समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुँह नहीं मोड़ सकता। अगर उसमें आदर्श शिष्य एवं एक आदर्श युवक बनने की आन्तरिक इच्छा एवं लगन हो, तथा यदि वह श्रेष्ठ मानव बनने के लिए कठोर प्रयत्न करे तो उसे श्रेष्ठ गुरु प्राप्त अवश्य होगा। प्रकृति में आवश्यकता और उसकी पूर्ति का एक अटूट विधान है, जो सच्ची आवश्यकता को निश्चित पूर्त्ति करता है। अतः युवा वर्ग का पहला कर्त्तव्य है कि वह श्रीरामकृष्ण के जीवन में अभिव्यक्त आदर्श युवक के सदगुणों को अपने जीवन में ढालने का प्रयत्न करे।

आज का युवक कल का प्रौढ़ और वृद्ध होगा; आज का अनुयायी कल का नेता होगा; आज का शिष्य कल का गुरु होगा। क्या युवा वर्ग का यह कर्तव्य नहीं है कि वह अपने चरित्र का इस सुचारु रूप से गठन करे कि वह आदर्श गुरु बन सके तथा आने वाली पीढ़ी यह शिकायत न कर सके कि उसे आदर्श गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त नहीं है? □

युवा शक्ति के प्रेरक स्वामी विवेकानन्द

—श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम

रायपुर (मध्य प्रदेश)

[अन्तर्राष्ट्रीय युवा वर्ष के उद्‌घाटन के उपलक्ष में, स्वामी विवेकानन्द के जन्म-दिवस १२ जनवरी को भारत शासन द्वारा राष्ट्रीय युवा दिवस घोषित किये जाने के अवसर पर, १२-१-८५ को आकाशवाणी, रायपुर से प्रसारित वार्ता।—सं०]

चिर शुभ्र हिमाच्छादित शैल-शिखर से फूटकर बहनेवाली निर्झरिणी के उद्दाम वेग ने शिल्पी भगीरथ के तपोवन के प्रभाव से अहर्निश सेवापरायण गम्भीर देव-सरिता का रूप धारण किया था। वैसे ही, आज की युवा-शक्ति-मन्दाकिनी अपने सर्जनशील गति-विन्यास के लिए शिल्पी विवेकानन्द की ओर सतृष्ण नेत्रों से निहार रही है।

स्वामी विवेकानन्द चिर यौवन के प्रतीक हैं। वे युवा-शक्ति के शाश्वत प्रेरक हैं। उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक देश की तरुणाई को प्रबुद्ध करने का सफल उपक्रम किया था। वैसे तो साधारण तौर पर वे विश्व की ही युवा-शक्ति को मानव-सेवा की ओर उन्मुख करने का प्रयास करते रहे, पर उनका विशेष ध्यान भारत की तरुणाई की ओर था, जिसके माध्यम से वे इस सुप्त राष्ट्र में नवजागरण की लहर फैला देना चाहते थे। युवा-शक्ति को लक्ष्य करके दिये गये उनके सम्बोधन जैसे उस समय प्रासंगिक थे, वैसे ही आज भी, क्योंकि उन्होंने जिन बिन्दुओं की चर्चा की थी, जिन समस्याओं का उल्लेख किया था, वे आज भी विद्यमान हैं। तभी तो जवाहर लाल नेहरू ने सन् १९५० ई० में स्वामी विवेकानन्द पर भाषण देते हुए कहा था—"पता नहीं कि आज की पीढ़ी में से कितने लोग स्वामी विवेकानन्द के व्याख्यानों और लेखों को पढ़ते हैं, पर मैं यह कह सकता हूँ कि मेरी पीढ़ी के बहुत से लोगों पर उनका बहुत सशक्त प्रभाव पड़ा था।...यदि आप स्वामी विवेकानन्द की रचनाओं और व्याख्यानों को पढ़ें, तो आप यह विचित्र बात पाएँगे कि वे पुराने नहीं हैं। उनका कथन यद्यपि ५६ वर्ष पहले हुआ था, पर वे आज भी ताजा हैं, क्योंकि उन्होंने जिन विषयों पर लिखा या कहा, वे हमारी समस्याओं अथवा विश्व की समस्याओं के मूलभूत पहलुओं से सम्बन्धित हैं। अतः स्वामीजी ने जो कुछ लिखा या कहा, वह हमारे हित में है और वह आनेवाले लम्बे समय तक हमें प्रभावित करता रहेगा।" उन्होंने आगे कहा, "वे साधारण अर्थ में कोई राजनीतिज्ञ नहीं थे, फिर भी, मेरी राय में, वे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के महान् संस्थापकों में से एक थे, और आगे चलकर जिन लोगों ने आन्दोलन में थोड़ा या बहुत सक्रिय भाग लिया, उनमें से अनेक के प्रेरणास्रोत स्वामी विवेकानन्द थे।" स्वामी विवेकानन्द की जन्म-शताब्दी के उपलक्ष में सन्देश देते हुए उन्होंने लिखा था—"इस अवसर पर मैं भारतमाता की इस महान् सन्तान के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ, जिसने हमारे देशवासियों में एक नया जीवन स्पन्दित किया।......"

स्वामीजी के इस शाश्वत युवा-शक्ति-प्रेरक रूप के प्रति अपनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए योगी अरविन्द ने लिखा था—"यदि कभी कोई शौर्यपुरुष था, तो वह विवेकानन्द

थे। वे पुरुषों में सिंह थे। हम उनके प्रभाव को अभी भी शक्तिशाली रूप से कार्य करते हुए पाते हैं—पता नहीं कैसे, कहाँ, ऐसे कुछ में, जो अभी रूपायित नहीं हुआ है। वह सिंहसदृश, महाबली, अन्तःप्रज्ञ, उत्तोलक प्रभाव भारत की आत्मा में प्रविष्ट हो गया है और हम कह सकते हैं—देखो! मातृभूमि और उसकी सन्तानों की आत्मा में विवेकानन्द आज भी विद्यमान हैं।"

स्वामी विवेकानन्द युवा-शक्ति से तीन बातों की अपेक्षा रखते हैं :— पहली है बल। वे समस्त बुराइयों की जड़ दुर्बलता में देखते हैं। दूसरी है—परस्पर के प्रति ईर्ष्या का अभाव। और तीसरी बात है—संगठित होकर देश की सेवा के लिए आत्म-समर्पण। बल का पाठ पढ़ाते हुए वे कहते हैं—"आज हमारे देश को जिस चीज की आवश्यकता है, वह है लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद के स्नायु — प्रचण्ड इच्छाशक्ति, जिसका अवरोध दुनिया की कोई ताकत न कर सके, जो जगत् के गुप्त तथ्यों और रहस्यों को भेद सके और जिस उपाय से भी हो अपने उद्देश्य की पूर्त्ति करने में समर्थ हो, फिर चाहे समुद्रतल में ही क्यों न जाना पड़े—साक्षात् मृत्यु का ही सामना क्यों न करना पड़े।"

जब एक दुबले-पतले युवक ने स्वामी जी से गीता के उपदेश सुनाने की प्रार्थना की, तो उन्होंने उसे शक्ति का उपदेश देते हुए कहा, "सबसे पहले हमारे नवयुवकों को बली होना चाहिए। धर्म फिर बाद में आएगा। तुम गीता के अध्ययन की अपेक्षा फुटबॉल के द्वारा स्वर्ग के अधिक समीप पहुँच सकोगे। जब तुम्हारी मांसपेशियाँ कुछ मजबूत हो जाएँगी, तब तुम गीता को अधिक अच्छा समझ सकोगे। जब तुम्हारे खून में कुछ जोर आ जाएगा, तब तुम कृष्ण की महान् प्रतिभा और प्रचण्ड शक्ति को और भी अच्छी तरह समझ सकोगे। जब तुम अपने पैरों पर दृढ़ता के साथ खड़े रह सकोगे और अपने को "मनुष्य" अनुभव करोगे, तब उपनिषदों और आत्मा की महत्ता को और भी अच्छी तरह जान सकोगे।"

विवेकानन्द यह मानते थे कि प्रत्येक राष्ट्र का एक प्राणकेन्द्र होता है और उसी के आधार पर उस राष्ट्र की संरचना और पुनर्जागरण हो सकता है। भारत के लिए यह प्राणकेन्द्र उनकी दृष्टि में धर्म था और वे यह कहते नहीं थकते थे कि धर्म और अध्यात्म के स्पन्दन को बिना तीव्र बनाये भारत का पुनरुन्मेष साधित नहीं किया जा सकता। देश की गुलामी और धार्मिक अन्धविश्वासों का कारण भी वे यथार्थ धर्मभाव की शिथिलता ही मानते थे। उनके लिए वेदान्त के उदात्त और सार्वभौम सिद्धान्त ही यथार्थ धर्मभाव का आधार थे, जहाँ सबको अपनी उन्नति के लिए समान अवसर उपलब्ध था। देश के जनसाधारण की दुर्दशा उच्च वर्ग के लोगों के अत्याचार के कारण हुई, जिन्होंने उन्नति के सभी साधनों पर अपना एकाधिकार कर लिया। अतः देश को उठाने के लिए स्वामीजी सबका, और विशेषरूप से युवकों का, ध्यान इस पीड़ित और बेबस जनसमुदाय की ओर आकर्षित करते हैं। उनकी दृष्टि में भारत राष्ट्र इन्हीं पीड़ितों और पददलितों का एक विराट् समुदाय था। वे इसी राष्ट्रदेवता की भक्ति करने के लिए युवकों का आह्वान करते हुए कहते हैं—"सब मिथ्या देवी-देवताओं को भुला दो, पचास वर्ष तक कोई उनका स्मरण न करे। यह हमारी जाति ही एकमात्र ईश्वर है। ····· हमारे सर्वप्रथम आराध्य हैं हमारे देशवासी, हमारे जातीय बन्धु··· ।" "हे भाइयो, हम सभी लोगों को इस समय कठिन परिश्रम करना होगा। अब सोने का समय नहीं है। हमारे कार्यों पर भारत का भविष्य निर्भर है। यह देखो, भारतमाता धीरे-धीरे आँखें खोल रही है। वह कुछ देर सोयी थी। उठो, उठो, उसे जगाओ और पूर्वापेक्षा महागौरव मण्डित कर भक्तिभाव से उसे अपने चिरन्तन सिंहासन पर प्रतिष्ठित करो।" फिर कहते हैं, "तुम्हें किसी भी प्रकार की विदेशी सहायता पर निर्भर नहीं रहना है। व्यक्ति की भाँति राष्ट्र को भी अपनी सहायता आप ही करनी होगी। यही सच्ची देशभक्ति है।" "ऐ बच्चो, सबके लिए तुम्हारे दिल में दर्द हो— गरीब, मूर्ख, पददलित मनुष्यों के दुःख का तुम अनुभव करो, समवेदना से तुम्हारे हृदय का स्पन्दन रुक जाय,

मस्तिष्क चकराने लगे, तुम्हें ऐसा प्रतीत हो कि हम पागल तो नहीं हो रहे हैं।''''

वे मद्रास के अपने एक व्याख्यान में कहते हैं—''ऐ नवयुवको, मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और अथक प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें सौंपता हूँ। जाओ, इसी क्षण जाओ उस पार्थसारथि के मन्दिर में, जो गोकुल में दीन-दरिद्र ग्वालों के साथ थे, जो गुहक चाण्डाल को भी गले लगाने में नहीं हिचके, जिन्होंने अपने बुद्ध-अवतार में अमीरों का न्योता अस्वीकार कर एक वारांगना का न्योता स्वीकार किया और उसे उबारा। जाओ उनके पास, जाकर साष्टांग प्रणाम करो और उनके सम्मुख एक महाबलि दो, अपने जीवन की बलि दो—उन दीन, पतित और उत्पीड़ितों के लिए, जिनके लिए भगवान् युग-युग में अवतार लिया करते हैं और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं।''

युवा-शक्ति को सेवा की प्रेरणा देते हुए वे और भी कहते हैं—''जाओ, जाओ, तुम सब लोग वहाँ जाओ, जहाँ प्लेग फैला हो, जहाँ दुर्भिक्ष काले बादल की भाँति छा गया हो, जहाँ लोग दुःख-कष्ट के भार से पीड़ित हों, और जाकर उनका दुःख हल्का करो। अधिक-से-अधिक क्या होगा ?—यही न कि इस प्रयत्न में तुम्हारी मृत्यु हो जायगी। पर उससे क्या ! तुम्हारे समान कितने ही लोग कीड़ों की भाँति प्रति दिन जन्म ले रहे हैं और मरते जा रहे हैं। इससे इस बड़ी दुनिया का भला कौन-सा टोटा हो जाता है ! तुम्हें मरना तो होगा ही, तो फिर एक महान् आदर्श लेकर क्यों न मरो ! जीवन में एक महान् आदर्श लेकर मर जाना कहीं बेहतर है। द्वार-द्वार जाकर इस आदर्श का प्रचार करो और इससे तुम्हारी अपनी उन्नति तो होगी ही, साथ ही तुम अपने देश का भी कल्याण करोगे। तुम्हीं पर हमारे देश का भविष्य निर्भर है—उसकी भावी आशाएँ केन्द्रित हैं। तुम्हें अकर्मण्य जीवन बिताते देख मुझे मार्मिक पीड़ा होती है। उठो ! उठो ! काम में लग जाओ—हाँ ! काम में लग जाओ ! शीघ्र, शीघ्र ! इधर उधर मत देखो—समय मत खोओ, दिन-पर-दिन काल तुम्हारे अधिकाधिक निकट आता जा रहा है। यह सोचकर निठल्ले बने मत बैठे रहो कि समय आने पर सब कुछ हो जाएगा। ध्यान रखो, ऐसा करने से कुछ भी न हो सकेगा।''

यह सब पढ़कर विश्वविख्यात फ्रेंच विद्वान एवं जीवनीकार रोमाँ रोलाँ पूछते हैं कि क्या भारत विवेकानन्द की वाणी से विभोर होकर उस द्रष्टा की आज्ञा के अनुसार कर्मरत हुआ ? और इस प्रश्न का स्वयं ही उत्तर देते हैं, ''मिथ्या स्वप्नवादिता से ग्रस्त, पूर्वग्रह से बंधे और स्वल्प प्रयत्न में ही निस्तेज हो जाने वाले जनसमाज का संस्कार क्षण में बदल देना सम्भव नहीं है। परन्तु स्वामीजी के निर्मम कशाघात से भारत ने सोते में पहली बार करवट ली और पहली बार उसने स्वप्न में अपनी प्रगति का शंखनाद सुना। उसे अपने ब्रह्म का बोध हुआ। भारत ने यह स्वप्न कभी विस्मृत नहीं किया। उसी से तन्द्रालस विशाल भारत का जागरण आरम्भ हुआ। विवेकानन्द के निधन के तीन वर्ष पश्चात् तिलक और गाँधी के महान् आन्दोलन के श्रीगणेश के रूप में जो बंग-विद्रोह आगत पीढ़ी के सामने हुआ, और मद्रास में आज तक जो संगठित जनआन्दोलन हुए, वे सब (स्वामीजी द्वारा दिये गये) 'मद्रास के संदेश'' में निश्चित ''लाजारस आगे बढ़ो'' की गुरुगम्भीर पुकार के कारण हुए, जिसने बहुतों को जगाया है। इस ओजस्वी संदेश का दोहरा अर्थ था—एक देश के लिए और दूसरा विश्व के लिए।''

स्वामीजी के इस आह्वान का ही प्रतिफल था कि युवक नेता सुभाषचन्द्रबोस ने लिखा—''स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देनेवाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी, उसके अतीत के प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्गारों से लोगों में आत्मनिर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं। स्वामीजी ने सुस्पष्ट रूप से राजनीति का एक भी संदेश नहीं दिया, किन्तु जो भी उनके अथवा उनकी रचनाओं

के सम्पर्क में आया उसमें देशभक्ति और राजनीतिक मानसिकता आप-से-आप उत्पन्न हो गयी !"

भारत के राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने अपने ऊपर पड़े स्वामीजी के प्रभाव को व्यक्त करते हुए कहा था—"इस शताब्दी के प्रारम्भ में जब मैं हाई स्कूल और कॉलेज का छात्र था तो हमलोग स्वामी विवेकानन्द के भाषण और पत्रसंग्रह पढ़ा करते थे, जो हाथ से नकल उतारे हुए होते और एक के पास से दूसरे के पास जाते। वे हमें प्रबल रूप से मथ देते और अपनी प्राचीन संस्कृति के प्रति हमें गर्व का अनुभव कराते। हिन्दू धर्म के महान् आदर्शों के पक्षधर होकर, मात्र जिनके द्वारा ही मानवता की रक्षा हो सकती है, स्वामीजी ने मानवता को एक श्रेष्ठ और उदात्त पथ की ओर ले जाने का प्रयास किया। आपके सामाजिक कार्यक्रम चाहे जो हों, आर्थिक और राजनीतिक जगत् में आप चाहे जितनी क्रान्तियाँ ले आएँ पर जब तक आपको धर्म की गतिशील प्रेरणा प्राप्त नहीं है, आप अपनी योजना में कभी सफल न होंगे।.......यदि आप सचमुच मनुष्य की दिव्यता में विश्वास करते हैं, तो एक क्षण के लिए भी हमारे पास आयी उस महान् परम्परा को स्वीकार करने में आप न हिचकें, जिसके स्वामी विवेकानन्द महानतम व्याख्याता थे।"

स्वामी विवेकानन्द युगपुरुष हैं। उनकी सारी आशाओं और आकांक्षाओं का केन्द्र युवा-शक्ति है। तभी तो उन्होंने कहा था—"मेरा विश्वास युवा पीढ़ी में - आज की पीढ़ी में है। उसमें से मेरे कार्यकर्त्ता निकलेंगे। वे सिंह के समान सारी समस्याओं का सामना करेंगे।' और भी कहा था—"मैं इन युवकों को संगठित करने के लिए जन्मा हूँ। मैं इन्हें भारत के वक्ष पर दुर्निवार तरंगों के रूप में भेजना चाहता हूँ, जिनसे ये सबसे पददलित और निम्न से निम्न लोगों के दरदर नीति, धर्म, शिक्षा और समृद्धि का प्रकाश ले जाएँ। और यह मैं करूँगा या मर जाऊँगा !"

"सबसे पहले उस विराट् की पूजा करो, जिसे तुम अपने चारों ओर देख रहे हो 'उसकी' पूजा करो।....... ये मनुष्य और पशु, जिन्हें हम आस-पास और आगे-पीछे देख रहे हैं, ये ही हमारे ईश्वर हैं। इनमें सबसे पहले पूज्य हैं हमारे अपने देशवासी।....... अपना सारा ध्यान इसी एक ईश्वर पर लगाओ, हमारा देश ही हमारा जागृत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ हैं, सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी-देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी-देवताओं को हम देख नहीं पाते, उनके पीछे तो हम बेकार दौड़ें और जिस विराट् देवता को हम अपने चारों ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें।"

—स्वामी विवेकानन्द

युव-शक्ति

—स्वामी शशांकानन्द
रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ।

युवावस्था मानव जीवन की श्रेष्ठतम अवस्था है, मानव शक्ति की चरम सीमा है। अतः युव-शक्ति मानव की सबसे प्रबल शक्ति है।

कोई भी शक्ति स्वयं में अच्छी या बुरी नहीं होती, शुभ या अशुभ नहीं होती। अच्छी या बुरी दिशा में परिचालित होने के कारण शक्ति का कार्य अच्छा या बुरा होता है। दोष शक्ति में नहीं बल्कि उसके दुरुपयोग में होता है। आणविक शक्ति की भाँति युव-शक्ति को ध्वंसात्मक एवं हिंसात्मक रूप दिया जा सकता है अन्यथा गठनात्मक रूप देकर सुख-शान्ति और प्रेम का संचार भी किया जा सकता है।

यदि इतिहास उठाकर देखें तो मालूम होगा कि जब-जब युवशक्ति को क्षण-भंगुर भौतिक इच्छाओं एवं पाशविक आकांक्षाओं की पूर्ति के लिए नियुक्त किया गया है, तब-तब मानव उच्च आदर्शों, नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों को तिलांजलि दे पाशविक निकृष्ट मनोवृत्ति का आश्रय लेता है; तब-तब मानव रावण, दुर्योधन, कंस आदि रूप-धारण कर हिंसात्मक एवं ध्वंसात्मक युव-शक्ति का संचार करता है। चारों ओर आतंक, दुःख और अशान्ति का साम्राज्य हो जाता है।

वर्तमान परिस्थिति उससे भी अधिक शोचनीय है। सहस्र वर्षों से हमारे समाज पर जो अत्याचार हुए हैं—विदेशियों द्वारा जनता पर अत्याचार, राजाओं द्वारा प्रजा का एवं जमींदारों द्वारा श्रमिक-वर्ग का शोषण, धनवानों द्वारा निर्धनों को अवहेलना पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर निरर्थक प्रभुत्व इत्यादि राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक अत्याचारों ने जन-साधारण को इतना कुचल दिया कि वह यह भी भूल गया कि वह मनुष्य है। अतः वह निराश, भयभीत, उत्साहहीन स्पन्दनहीन मृतप्रायः सा हो गया। सत्य, प्रेम, त्याग और सेवा के पथ पर चलने वाला मानव आत्मविस्मृत होकर अज्ञानांधकार में लुप्त हो गया और उस अंधकार में भौतिकवाद की कृत्रिम चकाचौंध को वह प्रतिभाशाली सूर्य समझ बैठा।

पाश्चात्य भौतिकवाद ने मानव को सुख-समृद्धि की निरर्थक आशा दिलायी। उस आशा ने मानव-समाज में एक हलचल सी मचा दी थी। सहस्र वर्षों के अत्याचार की ज्वाला से दग्ध एवं भौतिक समृद्धि एवं इन्द्रिय लोलुपता से उन्मत्त मानव पाश्चात्य सभ्यता का अवलम्बन कर, पाशविक एवं निकृष्ट हिंसात्मक वृत्तियों से प्रेरित होकर शाश्वत शान्ति खोजने के प्रयास में बालू का किला बनाने लगा। ऐसी भयावह युवशक्ति मानव समाज को विनाश के पथ पर ले जाना चाहती है, शान्ति के पथ पर नहीं।

भौतिक समृद्धि—धन, ऐश्वर्य तथा इन्द्रिय सुख में यदि शान्ति होती तो आज धनाढ्य देशों के लोग नींद की गोलियाँ न निगलते, पागलखानों में भर्ती होने वालों की संख्या में दिनों-दिन वृद्धि न होती और न ही होती इतनी खून-खराबी, परस्पर अविश्वास और युद्ध तथा दूसरों पर प्रभुता पाने की निकृष्ट आकांक्षा। आज सारा विश्व एक भयंकर ज्वालामुखी पर उपस्थित है।

प्रबल वेगवती इस भयंकर युव-शक्ति को कैसे रोका जाए? किसी भी वस्तु के प्रवाह में बाधा उपस्थित होने पर विपरीत क्रिया होती है। नदी के जल-प्रवाह में बाधा उपस्थित होने पर बाँध टूट जाते हैं, भयंकर बाढ़ और विनाश का सामना करना पड़ता है। विद्युत् प्रवाह में

बाधा उपस्थित होने पर अग्निकांड हो सकता है। युव-शक्ति के बारे में भी ऐसा ही जानिए।

युव-शक्ति के प्रवाह का अवरोध न कर उसकी दिशा में परिवर्तन करना ही श्रेष्ठकर है। आज आवश्यकता है युव-शक्ति को उस दिशा की ओर प्रेरित करने की जिस ओर भगवान् बुद्ध ने ३० वर्ष से कुछ अधिक आयु में अपनी युवशक्ति को सारनाथ में धर्म-चक्र चलाकर सारे विश्व में संचारित किया था।

बीस वर्ष से भी कम आयु में जिस दिशा में आचार्य शंकर ने ब्रह्मज्ञान की प्रचण्ड ज्वाला द्वारा अन्धविश्वास और पाखण्ड को भस्म करने में अपनी युव-शक्ति को प्रेरित किया था, जिस युव-शक्ति को श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपनी यौवनावस्था में भगवद्प्रेम और हरिनाम द्वारा भगवान् श्री हरि के चरणों में प्रवाहित किया था। जिस युव-शक्ति को श्रीरामकृष्ण देव ने अपनी अल्पायु में ही भगवद्विरह तदुपरान्त भगवल्लाभ करके उन्मुक्त किया था तथा जिसका संचार करने के लिए किशोर बालकों को तैयार किया था, जिस युव-शक्ति को स्वामी विवेकानन्द ने ३० वर्ष की आयु में ११ सितम्बर १८९३ ई० में शिकागो के महाधर्म सम्मेलन में उन्मुक्त किया था, उसी शक्ति के बल पर आज भी विश्व टिका हुआ है।

एक अनपढ़ दरिद्र ग्रामीण युवक के रूप में श्रीरामकृष्ण देव ने जिस युव-शक्ति का संचार किया था, उसने भारत की तत्कालीन राजधानी कलकत्ता के महामहिमान्वित पण्डित समाज को तो विस्मित किया ही था, साथ-ही साथ पाश्चात्य सभ्यता के धुरन्धर एवं सभ्य कहलाने वाले लोगों के समाज पर भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का विस्फोरण कर सभी को अवाक् कर दिया था। आज समस्त पृथ्वी का विद्वत् समाज उनके सामने नतमस्तक है।

तीस वर्षीय युव-संन्यासी स्वामी विवेकानन्द ने जिस शक्ति का विस्फोरण अमरीका में किया था, उसने सारी पृथ्वी को कंपायमान कर दिया था और आज भी उनकी वाणी समस्त विश्व में ध्वनित एवं प्रतिध्वनित होकर महान वेगवती युव-शक्ति का संचार कर रही है।

श्रीरामकृष्ण देव ने दक्षिणेश्वर की कोठी की छत पर व्याकुल होकर किशोर एवं युवकों को इस युव-शक्ति के प्रवाह में सम्मिलित होने के लिए आह्वान किया था। हे ! बुद्धिमान, क्षमताशील उत्साही युवकों उस आह्वान-को सुनो और सुनकर दौड़ आओ। अपनी पैतृक सम्पदा के रूप में प्राप्त इस युवशक्ति का मिलकर संचालन करो। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकान्दजी ने जिस युव-शक्ति का संचार किया है, वह किसी व्यक्ति-विशेष, धर्म-विशेष या राष्ट्र-विशेष के लिए नहीं है। अपितु, समस्त मानव जाति को होश में लाकर मनुष्य बनने के लिए सबसे उपर्युक्त शक्ति है।

हमें सर्वप्रथम अपनी आत्मविस्मृत अवस्था से निकल कर आत्मोपलब्धि करनी होगी एवं दूसरों को ऐसा करने में मदद करनी होगी। इसीलिए स्वामी विवेकानन्दजी ने "आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च" का अमोघ मंत्र युव-समाज के समक्ष रखा है। स्वामीजी ने कहा है,

"हमने अपनी आत्मश्रद्धा खो दी है।·····आत्मा अनन्त, सर्वशक्ति सम्पन्न और सर्वज्ञ है। इसलिए उठो, अपने वास्तविक रूप को प्रकट करो।····· तुम अपने को और प्रत्येक व्यक्ति को अपने सच्चे स्वरूप की शिक्षा दो और घोरतम मोह निद्रा में पड़ी हुई जीवात्मा को इस नींद से जगा दो। जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम आप ही शक्ति का अनुभव करोगे, महिमा और महत्ता पाओगे, साधुता आएगी, पवित्रता भी आप ही चली आएगी—मतलब यह है कि जो कुछ अच्छे गुण हैं, वे सभी तुम्हारे पास आ पहुँचेंगे।"

(वि० सा० खण्ड ५ पृ० ८९)

यह आत्मज्ञान ही मनुष्य को उस महिमा में प्रतिष्ठित कर देता है, जो असीम, अनन्त अविनाशी है; जिसे शस्त्र छेद नहीं सकता, पानी गला नहीं सकता, हवा सुखा नहीं सकती। उस आत्मा की महत्ता के सामने सूर्य-चन्द्रादि फीके पड़ जाते हैं, कुबेर का धन तुच्छ लगने लगता है और यमराज के भय से मुक्त मानव निर्भय होकर पृथ्वी पर अनन्त आनन्द का अधिकारी होकर विचरण करता है। इस ज्ञान से ही राष्ट्र को उसका खोया हुआ व्यक्तित्व मिल सकता है और युगों से पद-दलित एवं आत्महारा जन-समुदाय फिर से उठ सकता है। स्वामीजी की दृष्टि में यह राष्ट्र झोंपड़ियों में निवास करता है, जो अपना व्यक्तित्व खो चुका है। उसे उसका खोया हुआ व्यक्तित्व प्रदान करना होगा।

कौन यह कार्य सम्पन्न करेगा? कौन जन-साधारण को उसकी दीन-हीन अवस्था से निकालकर उसे आत्म-गौरव के ज्वाजल्यमान सिंहासन पर पुन: प्रतिष्ठित करेगा? स्वामी विवेकानन्द जी ने युवकों को ही इस कार्य के लिए चुना है। अपने पैरों पर खड़े होने का एवं दूसरों को स्वावलंबी होने में सहायता करने का; अपने भीतर अन्तर्निहित दिव्यता की अभिव्यक्ति करने एवं दूसरों को ऐसा करने में सहायता करने के पथ पर अग्रसर करते हुए उन्होंने उपनिषद् की वाणी का उच्चारण किया था—"उत्तिष्ठत्! जाग्रत्! प्राप्यवरान्निबोधत!" अत: हे युवको, आत्म महिमा में प्रतिष्ठित होकर अदम्य उत्साह, पवित्रता एवं निष्काम भाव से दूसरों को आत्म-महिमा में प्रतिष्ठित कराओ।' (Be and Make)

स्वामी विवेकानन्द जी ने इस गठनात्मक एवं प्रकृत युव-शक्ति के संचार का भार युवकों पर देते हुए कहा था,

"युवकों! मैं गरीबों, मूर्खों और उत्पीड़ितों के लिए इस सहानुभूति और प्राणप्रण प्रयत्न को थाती के तौर पर तुम्हें अर्पण करता हूँ।··· अपने समस्त जीवन की वलि दो—उन दीन-हीनों और उत्पीड़ितों के लिए, जिनके लिए भगवान् युग-युग में अवतार लिया करते हैं और जिन्हें वे सबसे अधिक प्यार करते हैं। (वि० सा० खण्ड १ पृ० ४०५)

···"जात-पाँत का भेद छोड़कर, कमजोर और मजबूत का विचार छोड़कर हर एक स्त्री-पुरुष को, प्रत्येक बालक-बालिका को यह सन्देश सुनाओ और सिखाओ कि ऊँच-नीच, अमीर-गरीब और बड़े-छोटे सभी में उसी एक अनन्त आत्मा का निवास है जो सर्वव्यापी है।"

(वि० सा० ख० ५ पृ० ८१)

इस सर्वव्यापी ईश्वर की मानव-मूर्ति में आराधना करने के लिए, स्वामी विवेकानन्दजी ने मानव-सेवा में माधव सेवा, शिवज्ञान से जीव की सेवा के पथ पर आह्वान करते हुए क्रान्तिकारी शब्दों में कहा था,

"बीस करोड़ नर-नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता के दलदल में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? उनके उद्धार का क्या उपाय है? ······ये ही तुम्हारे ईश्वर हैं, ये ही तुम्हारे इष्ट बनें। निरन्तर इन्हीं के लिए सोचो, इन्हीं के लिए काम करो, इन्हीं के लिए निरन्तर प्रार्थना करो—प्रभु तुम्हें मार्ग दिखाएगा। उसी को मैं महात्मा कहता हूँ जिसका हृदय गरीबों के लिए द्रवीभूत होता है अन्यथा वह दुरात्मा है।"

(वि० सा० ख० ३ पृ० ३४५)

··· "भारतमाता कम से कम एक हजार युवकों का बलिदान चाहती है—मस्तिष्क वाले युवकों का, पशुओं का नहीं। ·····मद्रास ऐसे कितने नि:स्वार्थी और सच्चे युवक देने के लिए तैयार है जो गरीबों के साथ सहानुभूति रखने के लिए, भूखों को अन्न देने के लिए और सर्वसाधारण में नव-जागृति का प्रचार करने के लिए प्राणों की बाजी लगाकर प्रयत्न करने को तैयार हैं और साथ ही उन लोगों को जिन्हें तुम्हारे पूर्वजों के अत्याचारों ने पशु-तुल्य बना दिया है, मानवता का पाठ पढ़ाने के लिए अग्रसर होंगे?"

(वि० सा० ख० १ पृ० ३९९)

इन अल्प शब्दों में स्वामी विवेकानन्दजी ने युव-शक्ति को एक नया मोड़ देने का प्रयास किया है। वे चाहते थे हमारे युवक गाँव-गाँव तथा घर-घर में जाकर लोकहित एवं ऐसे कार्यों में आत्मनियोग करें जिससे अपनी आत्मा की मुक्ति एवं जगत् का कल्याण हो। उनकी दृष्टि में स्वार्थ ही पाप है—मृत्यु है एवं निस्वार्थता ही पुण्य है—जीवन है। दूसरों की सेवा करने से हृदय बड़ा होता है, मन की मलिनता धुलकर पवित्रता आती है, पवित्र मन में ज्योतिर्मय परमपुरुष के दर्शन होते हैं एवं सेवा करने वाला जन्म-मरण के चक्कर से मुक्ति पाता है। सेवा-कार्य कैसे करें इस बारे में स्वामी जी ने कहा था—

"बच्चा, यदि तुम मेरी बात सुनो, तो तुम्हें पहले अपनी कोठरी का दरवाजा खुला रखना होगा। तुम्हारे घर के पास, बस्ती के पास कितने अभावग्रस्त लोग रहते हैं, उनकी तुम्हें यथासाध्य सेवा करनी होगी। जो पीड़ित हैं, उनके लिए औषधि द्वारा सेवा-शुश्रूषा करो। जो भूखा है, उसके लिए खाने का प्रबन्ध करो। तुमने तो इतना पढ़ा-लिखा है, अतः जो अज्ञानी हैं, उसे वाणी द्वारा जहाँ तक हो सके समझाओ। यदि तुम मेरा परामर्श मानो, तो इस प्रकार लोगों की यथासाध्य सेवा करो। यदि तुम इस प्रकार कर सकोगे, तो तुम्हारे मन को अवश्य शान्ति मिलेगी।"

(वि० सा० खण्ड १० पृ० ३४३)

मेरे हृदयवान, बुद्धिमान युवक पाठको! आज आवश्यकता है कि युव-शक्ति शिवज्ञान से जीव-सेवा में नियुक्त हो, जन-साधारण में नर-नारायण के दर्शन करे; सत्य, अहिंसा, प्रेम और सहानुभूति के मधुर वातावरण में त्याग और सेवा के आदर्श पर मानव को उसके परमलक्ष्य की ओर ले चले। यही युव-शक्ति प्रवाह की प्रकृत दिशा है। मेरे युवक भाइयो! अपने भीतर निहित इस शक्ति स्रोत को पहचानो और उपर्युक्त गठनात्मक दिशा में इस शक्ति का संचार करो।

□

हरी घास और देवदार

—स्वामी सोमेश्वरानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

"स्वामी जी, आप इतना हँसी-मजाक क्यों करते हैं? और इतना हँसते क्यों हैं?"

स्वामी जी ने ठहाका लगाया। कहा—"क्यों नहीं? आखिर हमलोग तो अमृत-पुत्र हैं। हमलोग क्यों मायूस नजर आएँ?"

हाँ, स्वामी जी अमृत-पुत्र थे। सदैव सस्मित! अन्तर्मुखी मन के बावजूद एक मुस्कुराहट हमेशा होठों पर खेलती हुई।

बालकवत्, किन्तु बचपना नहीं। क्योंकि स्वयं को समाजवादी घोषित करने वाले वे प्रथम भारतीय थे। उन्होंने जोर दिया वैज्ञानिक रीति अपनाने पर, हिन्दू-मुस्लिम एकता पर, तकनीकी एवं कल-कारखाने पर। साथ ही जोर दिया नारियों की मुक्ति पर और गरीबों के पुनरुत्थान पर। टुटपुँजिए राजनीतिज्ञों पर दहाड़ उठे— आवश्यकता है मनुष्य के द्वारा मनुष्य की मुक्ति की। और ऐसा करने की शक्ति है—उन्होंने कहा— युवकों में।

क्योंकि न तो वे महज एक संन्यासी थे और न ही एक समाज-सुधारक। वे ही थे जो वे थे—स्वामी विवेकानंद।

पर युवक ही क्यों? मजदूर क्यों नहीं— जैसा मार्क्स ने कहा, या फिर, किसान वर्ग क्यों नहीं जिनपर माओ की शक्ति आधारित थी:

मजदूर वर्ग एक क्रांतिकारी शक्ति है—यह बात संदेहास्पद हो गई है। इस सिद्धांत को अमेरिका ने गलत सिद्ध कर दिया है और साथ ही गलत सिद्ध किया है— इंगलैंड ने, जर्मनी और फ्रांस ने तथा अन्य उद्योग-प्रधान देशों ने। जारवादी रूस में सेना ने क्रांति में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनमें अधिकांश किसान-मजदूर थे। हमजा अलवी, अरविन्द दास, बी० बी० चौधरी एवं अन्यान्य चिंतकों के अनुसार भारत का गरीब किसान वर्ग अभी ऐसे क्रांति के लिये प्रस्तुत नहीं है। और इनमें से अधिकांश चिंतक मार्क्सवादी हैं।

एक नजर ईरान एवं फ्रांस पर डालें। शाह का ईरान से पलायन १९६८ का छात्र-जागरण, या फिर बंगला देश का मुक्ति संग्राम। चीन का सांस्कृतिक-जागरण (?), वियतनाम युद्ध के विरुद्ध अमरीकी जनता की आवाज या देखें लातीनी अमरीका, अफ्रीका और श्रीलंका को। भारत अपवाद नहीं है। कलकत्ता के डी-रोजियन आन्दोलन से शुरु कर जे० पी० आन्दोलन तक मुख्य भूमिका किसने अदा की?—युवकों ने।

और स्वामी विवेकानंद ने यह बात पिछली शताब्दी में कही थी।

१२ जनवरी को राष्ट्रीय युवा दिवस घोषित कर केन्द्र-सरकार ने सही कदम उठाया।

पर हम लड़कियाँ क्या कर सकती हैं इस दिशा में? हम तो हमेशा सामाजिक बंधन में बंधी हुई हैं।—पटना विश्वविद्यालय के छात्रों को संबोधित करते समय एक छात्रा ने प्रश्न उठाया। 'तुम्हें पता है स्वामीजी ने क्या कहा था?'—मैंने उसे अन्तर्निहित शक्ति के बारे में विश्वास दिलाना चाहा। स्वामीजी से एक बार पूछा गया? आप का लड़कियों के लिए क्या संदेश है? स्वामीजी बोले थे: वही संदेश जो लड़कों के लिए है—

स्वयं में विश्वास रखो। दृढ़ विश्वास रखो कि तुम्हारे जीवन का एक लक्ष्य है। जनजागरण के लिए तुम्हें कार्य करना है। अपनी अन्तर्निहित शक्ति के प्रति विश्वास रखो और उसे प्रकाशित करो।

अगर हमें क्रांति लानी है तो क्या हमें बाहर नहीं निकलना पड़ेगा? रैली नहीं आयोजित करनी है? शस्त्राच्छादित नहीं होना पड़ेगा? या चुनाव नहीं लड़ना पड़ेगा?

स्वामीजी से एक बार पूछा गया: आप राजनैतिक कार्यों की शिक्षा क्यों नहीं देते हैं? क्या भारत को स्वतंत्र कराना हमारा प्रथम कर्त्तव्य नहीं है? मुस्कुराहट भरा उनका उत्तर था: मान लो कल तुम्हें स्वाधीनना मिल जाय, पर क्या तुम इस स्वाधीनता को सच्चे अर्थों में कायम रख सकोगे? और फिर सिंह-गर्जन के साथ बोले: कहाँ हैं मनुष्य—साहसी, शक्तिवान, बुद्धिमान, हृदयवान और त्यागी? आवश्यकता है हमें माँसपेशियाँ लोहे की और स्नायु इस्पात के। आवश्यकता है हमें हजारों बुद्धों की जो अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दें। आवश्यकता है हमें मानव बनाने वाली शिक्षा की, मानव बनाने वाले धर्म की, मानव बनाने वाले आदर्शों की।

स्वामीजी ने बारबार कहा: जब तक एक व्यक्ति स्वंय में जागरण नहीं लाता है जब तक उसे जनजागरण के बारे में बात करने का कोई अधिकार नहीं है। स्वयं उनके शब्दों में:

किसी भी महत् कार्य करने के लिए तीन बातों की आवश्यकता है। प्रथम, हृदय से महसूस करने की। महसूस करो मेरे भावी सुधारको, मेरे भावी देश-भक्तो! क्या तुम यह महसूस करते हो कि अशिक्षा हमारी भूमि पर एक गहरे बादल की तरह छायी हुई है? क्या यह तुम्हें बेचैन करती है? क्या यह तुम्हें नींद नहीं होने देती? क्या यह तुम्हारे रक्त में प्रवाहित होकर तुम्हारे हृदय की धड़कन के साथ एक हो गयी है? क्या इसने तुम्हें लगभग पागल-सा कर दिया है? तब तुम महसूस कर रहे हो वरना तुम अपनी शक्ति महज लंबी लंबी बातों में नष्ट कर रहे हो। क्या तुमने कोई रास्ता निकाला है या कोई व्यावहारिक हल? पर इतना ही काफी नहीं है। क्या तुम्हें बाधा-रूपी पहाड़ को पार करने की इच्छा शक्ति है? अगर सारा संसार हाथ में तलवार लेकर तुम्हारे विरुद्ध खड़ा हो फिर भी तुम जिसे ठीक समझते हो उसे करने का साहस रखते हो?....अगर ये तीन तुम्हारे पास हैं तो तुममें से हरेक करिश्मा कर डालोगे। ऐसी शक्ति है विचारों की संलग्नता की, उद्देश्य की पवित्रता की।

अतएव, पहले हम स्वयं को तैयार करें। फिर? एक युवक या युवती का अगला कदम क्या होगा? एक नम्र शुरुआत। मुझे याद आती है सईबाल की, मेरा दोस्त, स्वामीजी का प्रशंसक, जो रिक्शा-चालकों को पढ़ाता है—सप्ताह में तीन दिन। नहीं, पैसे के लिए नहीं। महज प्रेम की भावना से। पीयू, एक छात्रा, जो अपने पड़ोस की नौकरानियों को शिक्षा देती है। तरुण, जो गाँव के लोगों को शराब पीने की लत से दूर कर रहा है और गृह-उद्योग सिखा रहा है, जिससे उनकी आय बढ़े। दुलाल, जो सुन्दरवन के मछुओं के बीच एक सहकारिता समीति बना रहा है जो उन्हें दुर्दिनों के समय सहायता करेगी। तपन, सरकारी कार्यालय का एक बाबू, जो स्वामीजी की पुस्तिकाओं का छात्रों में वितरण करता है।

ये लोग स्वामीजी के बहुत बड़े प्रशंसक एवं भक्त हैं। इनका आदर्श है—हम पहले कार्य शुरू करें। जनता समय पर आयगी।

जी हाँ, यही एकमात्र रास्ता है। सहज पकै सो मीठा होय।

पर युवा-वर्ग क्यों काम करेगा? स्वामीजी ने अपने एक पत्र में लिखा, "मैं उसे देशद्रोही समझता हूँ, जो करोड़ों पद दलितों के हृदय के रक्त से शिक्षित होकर एकबार भी उनके लिए नहीं सोचता।" क्या स्थिति है अभी? एक साधारण स्नातक को बनाने के लिए सरकार दस हजार रुपये से अधिक खर्च करती है, जबकि इंजीनि-

यरों और डॉक्टरों के पीछे एक लाख से भी अधिक। कहाँ से यह पैसा आता है ? गरीब सीधा-कर नहीं देते हैं। बिल्कुल ठीक, पर वे अप्रत्यक्ष कर देते हैं जो कुल कर की जमा राशि का अस्सी प्रतिशत है। अतएव, स्वामीजी ने जो गरीबों के धन से शिक्षित होने की बात कही है, वह आज भी लागू होती है। अपना कर्ज वापस करना युवकों का फर्ज है, जन-जागरण के प्रति कार्य करना उनका धर्म है, दयावश नहीं, आभार प्रदर्शन करने के लिए।

पाश्चात्य देशों से वापस आने के बाद कलकत्ता के एक स्वागत समारोह में उन्होंने कहा :

"उत्तिष्ठत, जाग्रत, प्राप्य वरान्निबोधत'। युवको, समय की पुकार है, उठो, जागो। डरो मत, साहसी बनो। तुम्हारे देश को आवश्यकता है बलिदान की। अत: उठो, जागो। जवान, फुर्तीले, बलवान, साहसी, बुद्धिमान— उनके लिए है यह कार्य। अगर तुम कहते हो कि मैंने कुछ किया है, तो याद रखो कि मैं कलकत्ता की गलियों में घूमने वाला निकम्मा लड़का था। अगर मैंने इतना किया है तो तुम कितना अधिक कर सकोगे ! उठो, युवको, अपने रक्त में उत्साह भर कर। पूरा विश्व मानव-शक्ति से, उत्साह से एवं विश्वास से बना है। डरो मत, क्योंकि हर महान् शक्ति, पूरे मानव इतिहास में, मनुष्यों के हाथों रही है। किसी चीज से मत डरो। तुम करिश्मा कर दिखाओगे। डरने के साथ ही तुम्हारा अस्तित्व समाप्त हो जाता है। संसार में दुख का मूल कारण भय है। भय सबसे बड़ा अंधविश्वास है। उठो, जागो और जब तक लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय रुको मत।

इन्हीं शब्दों के साथ उन्होंने कन्याकुमारी से श्रीनगर तक, बंगाल से गुजरात तक के युवकों के दरवाजे पर दस्तक दी।

और खुल गए द्वार। हजारों क्रांतिकारियों ने मशाल संभाल ली। समाज-सेवकों की भीड़ लग गयी। इतिहासज्ञ, कवि, राजनीतिज्ञ और अखबार नवीसों ने विवेकानन्द के स्वर पर ध्यान दिया। देखा। सम्मोहित हो गये। इस पुकार का जबर्दस्त असर हुआ। नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने लिखा : आज अगर वे जीवित रहते तो मैं उन्हें अपना गुरु स्वीकार करता। पंडित नेहरू ने एक भाषण में कहा : 'स्वामीजी ने अपना चालीसवां पूरा नहीं किया; उसके पहले ही उन्होंने भारत और विदेश को हिला कर रख दिया, उनके मस्तिष्क पर एक अमिट छाप छोड़ दी।.... मैं आपसे, विशेषकर युवकों से स्वामीजी के विचारों से अवगत होने के लिए कहूंगा।' मार्क्सवादियों ने भी स्वामीजी को सराहा। रूस के डॉ० चेलीसेव ने लिखा : वर्षों बीत जायेंगे, कई पुश्त निकल जाएँगे, विवेकानंद और उनका समय अतीत की बात हो जायेंगे, पर उस व्यक्ति की बात हमेशा लोगों को याद रहेगी जिसने अपने सारे जीवन में अपने लोगों के बेहतर भविष्य के बारे में सोचा। भारतीयों के साथ रूसी जो विवेकानन्द की रूस से कुछ प्रकाशित पुस्तकों के बारे में जानते हैं, उस भारतीय देशभक्त को, मानववादी एवं समाजवादी को हमेशा श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं जो अपने देश एवं सम्पूर्ण मानव जाति की भलाई के लिए लड़ते रहे।' चीन के प्रसिद्ध समाज-शास्त्री हुआंग किन चुआन ने एक भाषण में कहा—"चीन में विवेकानन्द सर्वाधिक प्रसिद्ध भारतीय दार्शनिक एवं सामाजिक व्यक्तित्व वाले जाने जाते हैं। उनके सामाजिक विचार एवं उनके अटूट देश-प्रेम ने केवल भारतीय स्वाधीनता संग्राम को ही नहीं वरन् दूसरे देशों को भी उत्साहित एवं प्रभावित किया। हम विवेकानंद की प्रशंसा करते हैं क्योंकि उन्होंने प्राकृतिक सत्य को जाना था।'

और यह प्राकृतिक सत्य क्या है ? संन्यासी होने के नाते उन्होंने मुक्ति पर जोर दिया। पर उन्होंने सावधान किया—मुक्ति यानी पूर्ण मुक्ति—मनुष्य को हर जंजीर से स्वतंत्र होना है। सामाजिक दुर्गुणों से, अमित्रवत् व्यवहार करने वाली प्रकृति से, स्वयं के आवेग एवं प्रकृति से। हरेक का तीन क्षेत्रों में पूर्ण विकास आवश्यक है—जागतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक। अन्न, आवास और वस्त्र

की समस्या का समाधान आवश्यक है, साथ ही आवश्यकता है सामाजिक कुरीतिओं को दूर करने की। और इस रूप में उन्होंने प्रस्तुत किया अपने राजनैतिक विचारों को। इसके लिए आवश्यक है बाहरी प्रकृति को जानने की, प्राकृतिक संपदाओं को जानने की। ऐसा करने के लिए विज्ञान एवं तकनीकी का प्रचार-प्रसार आवश्यक है। पर इतना ही यथेष्ट नहीं है। मनुष्य को धर्म की भी आवश्यकता है। धर्म के मूल तत्त्व—प्रेम, सत्य-प्रेमी, सहायता, मन का नियंत्रण—अत्यावश्यक हैं, एक नयी सामाजिक शृंखला के लिए। मनुष्य का प्रकृति पर नियंत्रण आवश्यक है—दोनों भीतरी एवं बाहरी। स्वामीजी ने कहा-किसी विधान का संशोधन या किसी विधेयक को संसद में पारित करने से ही कोई राष्ट्र नहीं बनता। हमें आवश्यकता है मानव-निर्माण एवं चरित्र-गठन की, अगर हमें समाज सुधार करना है तो'। अतः युवकों को क्या करना है? स्वामीजी ने कहा—साधारण जन को शिक्षित करो और तभी एक राष्ट्र का निर्माण संभव है। वास्तविक देश जो झोपड़ियों में रहता है अपने पौरुष को भूल गया है, और भूला है अपने व्यक्ति-वैशिष्ट्य को। उनको उनका व्यक्ति वैशिष्ट्य वापस देना है।

युवा-आंदोलन का ध्येय क्या है? स्वामीजी के अनुसार समाज को सदाबहार रखना है। युवकों को किसी साये से लड़ाई नहीं लड़नी है, बल्कि कपटता, अंधाधुंध नकल, कायरता, एवं बेड़ियों से। समाज को भी उन्हें हमेशा हरा-भरा रखना है—अपनी ही तरह।

चरित्र गठन? क्या अर्थ है? स्वामीजी ने कोई खास विशेष या कोई नारा नहीं निकाला इसके लिए। केवल अपनी बुद्धि ठीक रखनी है किसी भी प्रलोभन या धमकी के विरुद्ध। और यही चरित्र है उनके अनुसार।

और उनकी अंतिम पुकार थी युवकों के लिए: 'युवको! तुम अपनी मातृभूमि के भविष्य हो। तुममें से हरेक में शक्ति विद्यमान है। उसके प्रति सचेत हो। देश का उत्तरदायित्व संभालो। जागृत करो उसे। आगामी सहस्राधिक वर्ष तुम्हारी ओर आशा की टकटकी लगाये हुए हैं।'

हाँ, ये थे स्वामी विवेकानंद। वे आशा की सजीव मूर्त्ति थे। क्योंकि उनके ईर्द-गिर्द या पूरे संसार में हर बात गलत रास्ते चल रही है, इस विचार को उन्होंने नकारा।

चाहे जिस नाम से उन्हें पुकारें। देशभक्त। मसीहा। तूफानी संन्यासी। युवा नेता। चाहे कुछ भी। ये वही हैं—स्वामी विवेकानन्द।

युवा समस्या पर एक युवा चिन्तन

सागर, सीपी और मोती

श्याम किशोर

छपरा।

एक बन्धु हैं—तरुण, पर अनोखे। सुना है, एकबार देखा भी है, अपने माँ-बाप को खूब पीटते हैं। अपनी युवा बहन को बेवजह अँधेरी रात में घर से निकाल देते हैं। छोटी-छोटी बातों पर भड़क उठना ही ऐसी घटनाओं का कारण होता है। सबके सो जाने पर बेचारी अन्दर ले जायी जाती है —माँ के द्वारा।

एक सज्जन पागल हो गये हैं—प्रेमिका की बेवफाई, शादी के कारण। पढ़ाई-लिखाई छोड़कर आजकल घास छील रहे हैं।

हमारे सामने की एक ताजा घटना। दो युवक बात-चीत कर रहे थे। किसी बात पर उनमें बहस छिड़ गयी जिसका समापन यूँ हुआ---एक के द्वारा दूसरे को छुरा मार देना। यह सब मिनटों में हो गया।

इस तरह की कई घटनाएँ हैं। लड़कियों को छेड़ने की, नौकरी के अभाव में चोरी-राहजनी करने की, जेबें काटने की, लूट-खसोट करने की, दुर्व्यसनों, मद सेवन की और अन्त में तमाम परेशानियों से टूटकर आत्महत्या कर लेने की---बिखरी पड़ी हैं ऐसी अनगिनत तस्वीरें हमारे चारों ओर, रंगी मिलती हैं आजकल की पत्र-पत्रिकाएँ—ऐसे समाचारों से।

अब तो हाल यह है कि इन समाचारों से हमारी चेतना का कोई तार झंकृत नहीं होता, कोई खलबली नहीं मचती हमारे मन में। अगर मचती भी है. तो हम कुछ कर नहीं पाते, कुछ कह नहीं पाते इससे अधिक---"हम क्या कर सकते हैं? कलियुग है···।"

इसके बावजूद, युवा-वर्ग देश की रीढ़ है, मेरुदण्ड है। युवकों पर ही देश का भविष्य टिका हुआ है। एक कवि ने युवा को 'युग का जुआ' कहा है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, "मेरी आशा, मेरा विश्वास नवीन पीढ़ी के नवयुवकों पर है······इन्हीं पर भारत का भविष्य निर्भर है।" स्वामी जी को समाज एवं राष्ट्र के कल्याण के लिए सबसे पहले आवश्यकता दिखी वीर्य-वान, तेजस्वी, श्रद्धा-सम्पन्न और दृढ़विश्वासी निष्कपट नवयुवकों की। लेकिन, आज के युवा-वर्ग को शराब पीने से फुर्सत नहीं है, रोमांटिक पत्र-पत्रिकाएँ एवं उप-न्यास पढ़ने से फुर्सत नहीं है, गोरखधन्धा करने से फुर्सत नहीं है। वे मन लगाकर पढ़ें कैसे? उन्हें तो परीक्षा में कदाचार करने की आदत बन गयी है! अपने पावन उत्तरदायित्वों को वे समझें कैसे? उन्हें तो ताश-जुआ खेलने की आदत बन गयी है!

क्या कारण है युवा-वर्ग के इस घोर पतन का? क्यों आज के नवयुवक इतने म्रियमाण और उच्छृंखल हो गये हैं?

इस वर्ष के 'अन्तर्राष्ट्रीय युवा-वर्ष' का उद्देश्य भी यही है—युवा-वर्ग की समस्याओं पर समुचित विचार करते हुए उनका समाधान करना। उनके सामाजिक एवं आर्थिक उन्नयन के लिए नये-नये कानून बने हैं, तरह-तरह की योजनाएँ भी बनी हैं।

युवा-वर्ग की इस गिरावट के कई कारण हैं---पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक इत्यादि। और इन सब कारणों में जो प्रमुख कारण है, वह है व्यक्तिगत

जिसे एक शब्द में हम कह सकते हैं---Crisis of Identity– पहचान का संकट। युवा-हृदय की जो भूख है, वह है स्नेह, सहानुभूति एवं सम्मान पाने की, जिसकी सदैव एवं सर्वत्र उपेक्षा की जाती है।

परिवार के लोग अपने बच्चों को नैतिक प्रशिक्षण नहीं दे पाते, क्योंकि उनमें स्वयं नैतिकता नहीं है और वही बच्चे युवा होकर जब अपने बड़ों का अनुकरण करते हैं, नहले पे दहला छोड़ते हैं, तो सारे आरोप उन्हीं तरुणों के सिर मढ़ दिये जाते हैं। माता-पिता अपने मनोरंजन में व्यस्त रहते हैं, बच्चों के सामने घूस लेते हैं, झूठ बोलते हैं। बच्चों पर अपने परिवार के लोगों के आचरण का सबसे गहरा प्रभाव पड़ता है। स्नेह के अभाव में हताश मसृण मस्तिष्क क्या करे!

तथाकथित अछूत और निम्न-वर्ग के युवा किस तरह समाज द्वारा सताये जाते हैं, इसके सैकड़ों-हजारों उदाहरण हमारे आधुनिक साहित्य में तो मिलते ही हैं, हम स्वयं इसे समझ सकते हैं, अपने आसपास इसे देख सकते हैं। समाज के लोगों को जैसे चेतना ही नहीं है उन्हें सहानुभूतिपूर्ण और सम्यक् दिशा-निर्देश करने की। प्रोत्साहन की जगह उन्हें मिलता है तिरस्कार, अनादर, उपेक्षा······।

युवा-मानस को दिशाहीन करने में राजनीतिज्ञों की भूमिका भी कम अहम नहीं है। युवा-मस्तिष्क वह उर्वरा मिट्टी है जिससे किसी भी प्रकार की फसल तैयार की जा सकती है। राजनीतिज्ञ अपनी स्वार्थपूर्त्ति के लिए युवजनों का अक्सर दुरुपयोग करते रहे हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न कारकों के कारण आज युवा-मानस की चिन्तनधारा ही बदल गयी है, क्रिया-कलाप ही बदल गये हैं, आदर्श ही बदल गये हैं। मन को किसी दिशा-विशेष में युवजन नियोजित नहीं कर पाते, भिन्न-भिन्न विचारों के घात-प्रतिघात के कारण अपने चित्त को वे स्थिर नहीं कर पाते, किसी भी महत् निर्णय में उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व समाहित नहीं रहता।

क्या कारण है इसका? उपर्युक्त कारणों के कारण, दिशा-विहीनता के कारण वे अपने वास्तविक स्वरूप को भूल गये हैं, वे अपनी आंतरिक शक्ति, आंतरिक तेज की दिव्यता को भूल गये हैं। वे यह भूल गये हैं कि वे कौन हैं? उनका प्रखर निजत्व क्या है? उनका अपरिमेय आंतरिक भास्वर व्यक्तित्व कैसा है?

एक ऐसी भी प्रयोगशाला है जिसके द्वारा अपने निजत्व की खोज की जाती है और पता चलता है कि मैं मन नहीं हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं 'मैं' नहीं हूँ। मेरा व्यक्तित्व शिव है, आनन्द है; शाश्वत आनन्द मेरा स्वरूप है। शाश्वत सत्य का अनुसंधान कर मानव-जीवन के सौम्य आयाम को आनन्द की फुलवारी में प्रतिष्ठित करना ही इस प्रयोगशाला का एकमात्र पुनीत उद्देश्य है।

हिन्दू-धर्म की इस आध्यात्मिक प्रयोगशाला का नाम है—योग जिसकी एक प्रसिद्ध प्रशाखा है, राजयोग। पातंजल प्रणीत योगसूत्र इसका मौलिक आधार है। हम जानते हैं कि हमारे समस्त विक्षोभ की जड़ है—मन, मन की अस्थिरता। यही हमारी समस्त विकृत्तियों का मूल कारण है। राजयोग हमें मन का निग्रह करना, मन पर ही प्रयोग करना सिखाता है। स्वामी विवेकानन्द 'राजयोग' की अवतरणिका में इसका विश्लेषण करते हुए कहते हैं, "राजयोग विद्या पहले मनुष्य को उसकी अपनी आभ्यान्तरिक अवस्थाओं के पर्यवेक्षण का रास्ता दिखा देती है। मन ही उस पर्यवेक्षण का यन्त्र है।···· मन की शक्तियाँ इधर-उधर बिखरी हुई प्रकाश की किरणों के समान हैं। जब उन्हें केन्द्रीभूत किया जाता है, तब वे सब कुछ आलोकित कर देती हैं।"

यहाँ 'सब कुछ आलोकित करने' का तात्पर्य है—जीवन की वास्तविक सच्चाइयों का साक्षात्कार करना, आत्मा की नैसर्गिक सुषमा का अवलोकन करना। इस आत्मज्ञान की उपयोगिता क्या है? स्वामी जी के शब्दों में, "पहले तो, ज्ञान ही ज्ञान का सर्वोच्च पुरस्कार है; दूसरे, इसकी उपयोगिता भी है—यह समस्त दुःखों का हरण करेगा। जब मनुष्य अपने मन का विश्लेषण करते-

करते ऐसी एक वस्तु के साक्षात् दर्शन कर लेता है, जिसका किसी काल में नाश नहीं, जो स्वरूपत: नित्यपूर्ण और नित्यशुद्ध है, तब उसको फिर दु:ख नहीं रह जाता, उसका सारा विषाद न जाने कहाँ गायब हो जाता है।"

अधिकांश लोगों की धारणा यह है कि ध्यान, धर्म आदि बूढ़े लोगों के लिए है, समय गुजारने मात्र का एक उपाय है, साधन है। परन्तु, बात ऐसी नहीं है। राजयोग के विभिन्न आठ अंगों का स्वामी जी के 'राजयोग' में विस्तृत उल्लेख इस धारणा के छिछलेपन को छिन्न-विच्छिन्न कर देता है। इसके अनुसरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा किसी चीज को हम सम्पूर्णता में समझ सकते हैं, यह हमें बेमानी व्यस्तताओं से मुक्त करता है। इतिहास साक्षी है कि आजतक जितने भी बड़े-बड़े वैज्ञानिक, दार्शनिक, कवि-कलाकार एवं महापुरुष हुए हैं, सबने अपने को किसी दिशा-विशेष में नियोजित किया है।

योग-वाशिष्ठ में कहा गया है :—

"युवैव धर्मशील: स्यात् अनित्यं खलु जीवितम्
को हि जानाति कस्याद्य मृत्युकालो भविष्यति।"

अर्थात् 'जीवन की अनित्यता के कारण युवाकाल में ही धर्मशील बनो। कौन जानता है कब किसका शरीर छूट जायगा?' मानव जीवन का युवाकाल बहुत ही नाजुक होता है। अन्य अवस्थाओं की अपेक्षा युवाकाल में मन की अति चंचलता के कारण युवकों का भटक जाना सर्वविदित है। अतएव, आरम्भ में ही, युवावस्था में ही राजयोग के अंगों का अनुसरण करना चाहिए, ताकि हम विचलित होकर आत्महत्या नहीं करें, ताकि हममें साहस का, विश्वास का, तेज का, श्रद्धा का संचार हो, ताकि हम शाश्वत आनन्द में प्रतिष्ठित हो सकें।

कुछ लोगों की ऐसी धारणा है कि योग के अनुसरण से मनुष्य संसारत्यागी, संन्यासी हो जाता है। संन्यासी होने के औचित्य-अनौचित्य पर प्रकाश डालना यहाँ उपयुक्त नहीं होगा। फिर भी, श्रीरामकृष्ण के शब्दों में इतना तो कहा ही जा सकता है कि "ध्यान एवं धर्म का अनुसरण करने से ऐसा जरूर होता है कि हम संसार में तो रहते हैं, पर संसार हममें नहीं रहता। पानी में नाव रहे, तो ठीक है, परन्तु नाव में पानी के आने से नाव के लिए खतरा है।"

ध्यान करने में, प्रारम्भ में, बड़ी बोरियत-सी महसूस होती है, क्योंकि मन ध्यान में लगता ही नहीं। कुछ तो इससे उकताकर ध्यान करना ही छोड़ देते हैं। परन्तु, धीरे-धीरे अभ्यास करने से ध्यान में मन जमने लगता है, हमारी उद्विग्नता धीरे-धीरे खत्म होने लगती है और हमारे भीतर आनन्द की हाट लगने लगती है और हमेशा ध्यान में रहने का मन होने लगता है। किसी कार्यको अधिक कुशलता से करने के लिए हम उत्प्रेरित होने लगते हैं, किसी असफलता से हम अधीर नहीं होते, क्योंकि हमारी दृष्टि बदल जाती है। ऐसी दृष्टि हमारे अपने, समाज, राष्ट्र एवं विश्व के कल्याण के लिए मंगलमय सिद्ध होती रही है।

यदि हम युवजनों को अपने-आप से प्रेम है, राष्ट्र से प्रेम है, विश्व से प्रेम है, तो अपने अन्दर छिपी अनन्त शक्ति को उद्भूत करने के लिए ध्यान कर मन को स्थिर करना ही होगा।

आखिर हम कब तक अपने को धोखा देते रहेंगे? हम कब तक आत्महत्या करते रहेंगे? सच! दुर्बलों की तरह जी-जीकर हम दुर्बल हो गये हैं, हम गीदड़ बन गये हैं। श्री ठाकुर कहा करते थे—"जैसा सोचोगे, वही हो जाओगे।"

स्वामी जी की सांत्वनाभरी स्नेहिल पुकार को हमें सुनना चाहिए—"तुम रोते क्यों हो, बन्धु? तुम्हीं में तो सारी प्रकृति निहित है। ऐ महान्, अपनी सर्वशक्तिमान प्रकृति को उद्बुद्ध करो; देखोगे, यह सारी दुनिया तुम्हारे पैरों पर लोटने लगेगी······आज देश को आवश्यकता है साहस और वैज्ञानिक प्रतिभा की। हम चाहते हैं प्रबल साहस, प्रचण्ड शक्ति और अदम्य उत्साह······।"

यदि हम नवयुवकों को सफलता एवं आनन्द में प्रतिष्ठित होने की भूख है, यदि हम वीर की तरह जीना चाहते हैं, तो राजयोग के ध्यान की गहराई में हमें उतरना आवश्यक है। ध्यान की प्रयोगशाला में जाकर हमें इस चिरन्तन सत्य का अनुसंधान करना ही चाहिए।

हम एक सागर के समान हैं, हमारा मन कामनाओं, वासनाओं, कच्चे अहं और क्षुद्र आकांक्षाओं की उत्ताल लहरें उठाता रहता है। किन्तु, गहराई में हमारी चेतना की सीपियाँ अपने भीतर अनन्त आनन्द-स्वरूप सच्चिदानन्द ब्रह्म रूपी मुक्ता-मणि को छिपाये हैं। हमें ध्यान के द्वारा अपने में अन्तर्हित उस मोती का उद्‌घाटन करना होगा, अपने विराट् परमात्म रूप का बोध करना होगा, अपने शिव स्वरूप का साक्षात्कार करना होगा। इस रूप का बोध कर प्रत्येक युवक एक सचल तीर्थराज हो जायगा--प्रत्येक युवक राम, कृष्ण, बुद्ध, जीसस और मुहम्मद जैसा होगा तथा प्रत्येक युवती सीता, सावित्री, मैत्रेयी, गार्गी, माँ सारदा, मेरी और रबिया जैसी होगी—शुद्ध, बुद्ध, निरंजन, तेजोदीप्त, प्रखर किन्तु शान्त, सौम्य और कर्म-कौशल से युक्त।

आओ बन्धु ! हम सागर की लहरों को भेद कर अपनी सीपी में छिपे अनमोल मोती को जानें--पहचानें, परखें और प्राप्त करें। स्वयं को जानकर अपना तथा विश्व का मंगल करें।

विवेक शिखा के ग्राहकों एवं पाठकों से निवेदन

विवेक शिखा के जिन ग्राहकों की सहयोग राशि इस अङ्क के साथ समाप्त हो जाती है, उनसे हार्दिक अनुरोध है कि अगले वर्ष के लिए अपनी सहयोग राशि के बीस रुपये मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट द्वारा शीघ्र भेजकर अपनी ग्राहकता का नवीनीकरण करा लेने की कृपा करें।

विवेक शिखा के जो पाठक-बन्धु अब तक इसके ग्राहक नहीं बन सके है, उनसे भी निवेदन है कि वे स्वयं शीघ्र इसका ग्राहक बनने तथा अपने मित्रों को ग्राहक बनाने की अनुकम्पा करें।

विवेक शिखा रामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एक मात्र सशक्त हिन्दी मासिक पत्रिका है। वर्तमान मूल्यहीनता, अनैतिकता, साम्प्रदायिकता, संत्रास और निराशा के घोर अंधकार में आशा और अमृत का ज्योतिकलश लेकर आपके समक्ष उपस्थित है—विवेक शिखा। इसे अपनाइए। इसे अपने घर में लाइए। इसे घर-घर में ले जाइए।

व्यवस्थापक
विवेक शिखा
रामकृष्ण निलयम्,
जयप्रकाश नगर,
छपरा—८४१३०१
(विहार)

स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य
रामकृष्ण मठ, नागपुर।

२. कलकत्ता आगमन

[अलक्ष्य संकेत, परिव्राजकगण का निर्देश, चाचा का चरित, ग्रामत्याग, कलकत्ते के पथ पर, नौकरी की खोज में, श्री रामचन्द्र दत्त के आश्रय में, श्री रामचन्द्र दत्त का संक्षिप्त परिचय, लालटू का गृहकर्म, हम नौकर हैं, चोर नहीं—लालटू की स्पष्टवादिता, लालटू के प्रतिवाद का तरीका तथा लालटू का वैशिष्ट्य।]

मानवजीवन काफी कुछ ऐसे ही अलक्ष्य संकेतों से नियन्त्रित हुआ करता है। जिस समय उनके चाचा अत्यन्त चिन्तामग्न थे, ठीक उसी समय उनके गाँव की सीमा पर कुछ परिव्राजकों का आगमन हुआ था। ग्राम्य परिपाटी के अनुसार परिव्राजकगण की अभ्यर्थना के लिए आने पर रखतूराम के चाचा को उनसे कलकत्ता जाने का निर्देश मिला। परन्तु उस निर्देश को क्रियान्वित करते समय बहुत सी बाधाएँ आ खड़ी हुईं। ग्रामवासियों ने रखतूराम के चाचा को अपने ग्राम में ही रखना चाहा—कइयों ने तो इतना तक वचन दिया कि वे महाजन से अनुनय-विनय करके उनकी जमीन में पुनः खेती की सुविधा करा देंगे। परन्तु उन सबका प्रयास विफल हुआ। कोई भी रखतूराम के चाचा को स्वग्रामवासी बनाकर रख पाने में सफल न हो सका।

रखतूरान के चाचा के चरित्र में तेजस्विता का अभाव न था। वे किसी के द्वारा अनादर या अपमान सहन न कर पाते थे। ऋणजाल में फँस जाने के बाद अनेक ग्रामवासियों ने यह सोचा था कि अब तो उनके चाचा का उन्नत मस्तक महाजन के सम्मुख झुककर आनुगत्य स्वीकार कर लेगा, परन्तु उन्होंने ऐसी दीनता नहीं दिखायी, वरन् उन्होंने अपना सर्वस्व महाजन के हाथ सौंप ऋणमुक्त होकर ग्रामत्याग किया।

गाँव छोड़ते समय चाचा के मन की कैसी अवस्था थी यह तो नहीं मालूम, परन्तु बालक रखतूराम के नेत्र छलछला आये थे—यह बात उन्होंने एक ऐसे ही व्यथा से पीड़ित स्नेहपात्र के समक्ष व्यक्त कर डाली थी—"अरे! गाँव छोड़कर चले आने को क्या मन चाहता! मुझे तो रोना आ गया था। तुमलोगों के तो नाते-रिश्तेदार सब हैं, उन्हें भला कैसे छोड़ सकोगे? मेरे तो कोई भी न था, तो भी मैं न छोड़ सका था।"

अस्तु, बहुत दिनों तक पथ चलते-चलते थककर रखतूराम और उनके चाचा आखिरकार छपरा से कलकत्ता जा पहुँचे। कलकत्ता आकर वे और भी अधिक संकट में पड़ गये। प्रस्थान करने के पूर्व उनके मन में कलकत्ते के बारे में जो धारणा थी, वहाँ पहुँचकर उन्होंने पाया कि कलकत्ता नगरी वैसी नहीं है। यहाँ पर एक अनजान परिचित व्यक्ति को पास में धन न होने पर भूखे रहकर भी दिन बिताने पड़ते हैं। वे जानते थे कि गाँव में कोई भी अनाहार से नहीं मरता, परन्तु इस महानगरी की अति समृद्धि के बीच भी दुर्भिक्षग्रस्त लोगों

का प्राचुर्य देखकर वे मानो अपार सागर में गिर पड़े। उन्हें तो यह पता न था कि एक अपरिचित, अनजान, असहाय व्यक्ति के लिए कलकत्ता नगरी का हृदय अत्यन्त निष्ठुर है, अतीव निर्मम है। यहाँ पर कोई किसी की भी खोज-खबर नहीं रखता—पथिक ने खाया अथवा नहीं यह भी कोई पूछने वाला नहीं। यहाँ पर अतिथि का ही अर्थ है भिक्षुक—कलकत्ते में आकर ऐसी हृदय-हीनता का परिचय पाकर रखतूराम और उनके चाचा कई दिनों तक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहे।

परन्तु जिस व्यक्ति ने महाजन की अधीनता स्वीकार करने में द्विधा की है, वह भला इस विमूढ़ता का भी कितने दिनों तक आश्रय लेगा ? तुरन्त ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर रखतूराम के चाचा कलकत्ते में रहनेवाले अपने ग्रामवासियों की खोज में निकल पड़े। ढूँढ़ते हुए कुछ दिनों के भीतर ही वे फूलचन्द नामक अपने एक ग्रामवासी के आश्रय में जा पहुँचे।

फूलचन्द उस समय मेडिकल कॉलेज में श्रीयुत रामचन्द्र दत्त के अर्दली थे। मालिक से कहकर फूलचन्द ने वालक रखतूराम के लिये एक नौकरी की व्यवस्था कर दी।

उदार-हृदय रामदत्त के आश्रय में बालक रखतूराम को सौंपकर उनके चाचा काफी कुछ निश्चिन्त हुए। उसी समय से वालक अपने चाचा से बिछुड़ गया।

आश्रितवत्सल रामदत्त के घर में ही इस बालक-भृत्य को अपना चरित्र-गठन करने को उपयुक्त परिवेश मिला था। चरित्रनिष्ठा के मामले में श्री रामचन्द्र दत्त की प्रसिद्धि थी—उन दिनों बहुत से लोग उन्हें एक आदर्श चरित्रवान व्यक्ति मानने लगे थे। जिस प्रकार वे स्वयं अपने ऊपर के गुरुस्थानीय लोगों का आदेश पालन करने में तत्परता दिखाया करते थे, उसी प्रकार वे दूसरों से भी आज्ञापालन की अपेक्षा करते थे। उस काल के नव-शिक्षितों में जो आदत फैल गयी थी, उसकी वे समालोचना किया करते थे। यद्यपि किसी आदेश या उपदेश का विविध प्रश्नों के द्वारा विश्लेषण करने के आग्रह को वे यथेष्ट उत्साह दिया करते थे; परन्तु विश्लेषण के पश्चात् अकर्मण्य होकर बैठे रहने की वे न केवल निन्दा करते थे, वरन् उसे सत्साहस का अभाव ही मानते थे। वे मौखिक विनय एवं नम्रता को महत्त्व न देते थे, परन्तु जहाँ कहीं भी वे देखते कि हृदय का आवेग ही श्रद्धा एवं स्नेह के रूप में अभिव्यक्त हो रहा है, वहीं पर वे अपने आपको न्यौछावर कर देते थे। सच्चे निर्लोभी होने के कारण सभी उनकी बड़ाई करते थे। ऐसे मालिक के आश्रय में आकर बालक रखतूराम शीघ्र ही कर्मठ, आज्ञापालन में तत्पर, कर्त्तव्यनिष्ठ और सच्चरित्र हो उठा। भृत्य के ये सद्‌गुण क्रमशः लोगों की निगाह में पड़ने लगे और सब ने स्नेहपूर्वक उन्हें 'लालटू' कहकर सम्बोधित करना शुरू कर दिया (हम भी अबसे उन्हें लालटू ही लिखेंगे)।

मालिक के घर में लालटू का कार्य था—बाजार करना, महिलाओं को टहलाने ले जाना, उनके आदेशानुसार कार्य करना, फिर मालिक राम दत्त का टिफिन-कैरियर पहुँचाना, बीच-बीच में दुकान के तगादे के लिये जाना। ये सब कार्य लालटू अत्यन्त तत्परतापूर्वक किया करता था। इसके अतिरिक्त अपने शौक से वह प्रतिदिन कुश्ती और कसरत का अभ्यास किया करता था। नौकर के कुश्तीबाजी का शौक घर के किसी-किसी को पसन्द न आता था, परन्तु उदारचेता रामचन्द्र ने लालटू को कभी भी इसके लिए मना नहीं किया।

एक दिन रामबाबू के एक मित्र ने बताया कि कुश्तीबाज आदमी को नौकर रखना उचित नहीं है। इसके उत्तर में रामबाबू ने कहा था—"तुमलोग तो समझते नहीं कि कुश्ती लड़ने से काम घट जाता है, अपने आप ही वीर्य-रक्षा हो जाती है" यह सुनकर मित्र ने खर्च आदि की बात उठायी, इस पर रामबाबू बोले—"तुमलोग स्वंय जैसे दुर्बल हो, वैसा ही दुर्बल नौकर भी चाहते हो। क्या नौकर को भरपेट खाने भी न दोगे ? नौकर है तो क्या

उसके प्रति इतनी उपेक्षा दिखाओगे ? वह भी मनुष्य ही है । क्या उसके साथ कुत्ते-बिल्ली जैसा व्यवहार करना चल सकता है ? कुत्ते को तो भरपेट खाना देते हो—नौकर को क्या उतने से भी वंचित करने की सोचते हो ? मालिक और नौकर के बीच ऐसा सम्बन्ध उचित नहीं है ।" इन बातों को सुनकर वे मित्र चुप रह गये ।

एक अन्य दिन उनके एक अन्य मित्र को सन्देह हुआ कि रामबाबू का यह बालक-भृत्य बाजार के पैसों में से चोरी करता है । अपने मित्र की भलाई करने की इच्छा से उन मित्र ने एक दिन अकेले में लालटू से पूछा—"क्यों रे छोकरे ! ठीक ठीक बोल तो आज कितने पैसे मारे ?" मालिक के मित्र का ऐसा प्रश्न बालक लालटू को सहन न हुआ । वह जोर की आवाज में बोला—"जान लीजियेगा बाबू ! हम नौकर हैं, चोर नहीं हैं ।" बालक-भृत्य की यह दम्भपूर्ण उक्ति पचा न पाकर मित्र ने यह बात रामबाबू को बतायी । सब सुनने के बाद रामबाबू ने मित्र को कहा था—"देखिए ! मेरा लालटू चोर-बदमाश नहीं है, उसे जब जिस चीज की आवश्यकता होती, अपनी माँ से माँग लिया करता है ।" नौकर के लिए मालिक के मुख से ऐसी ऊँची प्रशंसा मिलना आजकल भी दुर्लभ है ।

मालिक के घर में कार्य करते समय स्पष्टवादी के रूप में लालटू की काफी बदनामी या सुनामी हो गयी थी । कई बार तो उसके सरल ग्राम्यदोषों से युक्त स्पष्टवादिता में कुछ अप्रिय वाक्यों का भी समावेश हुआ करता । परन्तु लालटू का उस ओर ध्यान ही न था । रामबाबू के बहुत से मित्र इस स्पष्टवादी भृत्य की रूक्षता पर नाराज हो जाते थे । रामबाबू जानते थे कि लालटू कभी-कभी अपनी ग्राम्य अभद्रता के साथ स्पष्टवादी होना चाहता है । रामबाबू यह बात भी जानते थे कि उपर्युक्त परिस्थितियों में न्याय एवं मर्यादा की रक्षा के लिए स्पष्टवादी न होने पर अपमानित होना पड़ता है, इसी कारण वे मित्रों की शिकायत पर भी न्यायभ्रष्ट होना नहीं चाहते थे । जहाँ जहाँ सत्य की अमर्यादा दीख पड़ती, वहाँ वहाँ लालटू की स्पष्टवादिता भी व्यक्त हो उठती, जब जब मित्रगण मालिक रामबाबू को झाँसा देकर उनका धन आदि लेने का उपक्रम दिखाते, तब तब लालटू की स्पष्टवादिता अपने आप ही बाहर निकल पड़ती ।

उनके उस काल के जिस व्यक्तित्व का विवरण हमें श्री महेन्द्रनाथ दत्त से प्राप्त हुआ है, उसे हम आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं—"उनके प्रतिवाद के ढंग के बीच पहलवानी का भाव अभिव्यक्त हो उठा करता था । उनकी टेढ़ी गरदन, थोड़ी उठी हुई ठोढ़ी, खुले तेजस्वी नेत्र, नासिकारन्ध्रों का थोड़ा उभारापन, उनका मुष्टिबद्ध हावभाव तथा आधी हिन्दी (आधी बंगला से मिश्रित), उनकी तोतली बोली—यह सबकुछ मिलकर प्रतिपक्ष को अवाक् कर देते ।"

परवर्ती काल में लालटू के जीवन की ये विशेषताएँ अत्यन्त स्पष्ट हो उठी थीं । मधुर वचन के वे (तब लाटू महाराज) बड़े भक्त थे, परन्तु जहाँ कहीं भी वे अविनय की धृष्टता देखते (भले ही वह गुरुभाइयों में हो या सामजिक नेताओं में) वहीं उसका तीव्र प्रतिवाद करते । कपट भक्ति से उन्हें घृणा थी, पर सरल हृदय के नशेबाजों को वे आश्रय दिया करते थे । क्रमशः हम उन्हीं बातों की ओर अग्रसर होंगे ।

पवित्र होना और दूसरों का हित करना—सभी उपासनाओं का यही सार है। जो दरिद्रों में, दुर्बलों में और रोगियों में शिव को देखता है वही शिव की सच्ची पूजा करता है और यदि वह केवल प्रतिमा में शिव को देखता है, तब उसकी पूजा मात्र प्रारंभिक है।

—स्वामी विवेकानन्द

This is the gist of all worship—to be pure and to do good to others. He who sees Siva in the poor, in the weak, and in the diseased, really worships Siva; and if he sees Siva only in the image, his worship is but preliminary.

—SWAMI VIVEKANANDA

बैद्यनाथ च्यवनप्राश
सदा सबके लिए सेवनीय
स्फूर्ति
कफ खांसी नाशक
यौवन
दिमागी ताजगी
विकास
बलवर्द्धक
स्पेशल
बैद्यनाथ च्यवनप्राश
आदर्श आयुर्वेदिक पारिवारिक टानिक
बैद्यनाथ च्यवनप्राश क्यों ?
क्योंकि यह ५० से ज्यादा जड़ी-बूटियों के तत्वों से बना ऐसे प्राकृतिक विटामिनों से भरपूर है जो मानव शरीर के लिए आसानी से पाचन योग्य है। रासायनिक प्रक्रिया से बनाये गये दूसरे टानिकों में यह गुण नहीं होता। इसके अलावा, बैद्यनाथ च्यवनप्राश आपके लिए और आपके परिवार के लिए अति आवश्यक स्वास्थ्यवर्धक टानिक है क्योंकि यह है :
● विटामिन 'सि' से भरपूर
● कफ खांसी, जुकाम नाशक
● केल्शियम एवं खून की कमी के लिये
● ताजगी और तन्दुरुस्ती के लिये
● यौवन के लिये
● आयु व बलवर्द्धक
● त्रिदोष नाशक
बैद्यनाथ ७०० से अधिक दवाएं पांच आधुनिक कारखानों में तैयार करता है
श्री बैद्यनाथ आयुर्वेद भवन लिमिटेड
कलकत्ता ● पटना ● झाँसी ● नागपुर ● इलाहाबाद

डाक पंजीकृत संख्या पी० एच० पी० १४—८१ अंक—११-१२, १९८०

विवेक वाणी

………नवयुवको, तुम्हारे ऊपर ही मेरी आशा है। क्या तुम अपनी जाति और राष्ट्र की पुकार सुनोगे ? यदि तुम्हें मुझ पर विश्वास है तो मैं कहूँगा कि तुममें से प्रत्येक का भविष्य उज्जवल है। अपने आप पर अगाध, अटूट विश्वास रखो, वैसा ही विश्वास, जैसा मैं बाल्यकाल में अपने ऊपर रखता था और जिसे मैं अब कार्यान्वित कर रहा हूँ। तुममें से प्रत्येक अपने आप पर विश्वास रखो। यह विश्वास रखो कि प्रत्येक की आत्मा में अनन्त शक्ति विद्यमान है। तभी तुम सारे भारतवर्ष को पुनरुज्जीवित कर सकोगे। हमें भारत में बसनेवाली और भारत के बाहर बसनेवाली सभी जातियों के अन्दर प्रवेश करना होगा। इसके लिए हमें कर्म करना होगा। और इस काम के लिए मुझे युवक चाहिए। वेदों में कहा है, 'युवक, बलशाली, स्वस्थ, तीव्र मेधावाले और उत्साहयुक्त मनुष्य ही ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं।' तुम्हारे भविष्य को निश्चित करने का यही समय है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि अभी इस भरी जवानी में, इस नये जोश के जमाने में हो काम करो, जीर्ण शीर्ण हो जाने पर काम नहीं होगा। काम करो, क्योंकि काम करने का यही समय है। सबसे अधिक ताजे, बिना स्पर्श किये हुए और बिना सूँघे फूल ही भगवान् के चरणों पर चढ़ाये जाते हैं और वे उसे ही ग्रहण करते हैं। अपने पैरों आप खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षण-स्थायी है। वकील बनने की अभिलाषा आदि से कहीं अधिक महत्वपूर्ण कार्य करने हैं तथा इससे भी ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और समग्र मानव-समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो।………जीवन की अवधि अल्प है, पर आत्मा अमर और अनन्त है, और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ, हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपना जीवन उत्सर्ग कर दें।

—स्वामी विवेकानन्द

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित।